देश के कर्णधार



कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

देश के कर्णधार

देश के कर्णधार

(जीवनियां)

श्री कृष्ण अग्रवाल

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

श्रीकृष्ण अग्रवाल,

◎

१९७०

◎

मूल्य

: एक रुपया पचास पैसे

◎

प्रकाशक—

जयकृष्ण अग्रवाल
कृष्णा ब्रदर्स,
कचहरी रोड, अजमेर ।

◎

मुद्रक—

एच० सी० कपूर
टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी अजमेर ।

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक में राष्ट्र के उन अमर सैनिकों का जीवन चरित्र संग्रहीत है, जो भारत माता की दासत्व शृंखलाओं का उन्मूलन करने के लिए अश्रुतपूर्व बलिदान और जन-सेवा की भावनायें लेकर स्वाधीनता संग्राम में कूदे। स्वाधीनता का यह संग्राम 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' के जन्म से प्रारम्भ होकर सन् १६४७ ईस्वी तक चलता है इस बीच में स्वाधीनता के इन अमर पुजारियों ने देश में सर्वत्र जागरण की एक लहर दौड़ा दी और मानवीय अधिकारों से वंचित जनता को स्वाधीनता संग्राम के लिए संगठित होने की प्रेरणा दी। इन जन-नायकों ने बड़े-बड़े तूफानी आन्दोलनों का नेतृत्व किया, किन्तु इनका नेतृत्व भारतीय भावना के अनुकूल सदैव अहिंसात्मक रहा। आज देश के उन्हीं सर्वस्वत्यागी नेताओं की सेवाएँ सफल हुई हैं और भारतीय प्रांगण को ऊषा की स्वर्णिम-किरण-माला आलोकित कर रहा है।

लेखक ने इन्हीं नर-पुङ्गवों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित की हैं। स्वदेश के भावी कर्णधार, विद्यार्थीवृन्द राष्ट्र की इन अमूल्य निधियों से बल और प्रेरणा प्राप्त करें।

—लेखक

देश के कर्णधार

•

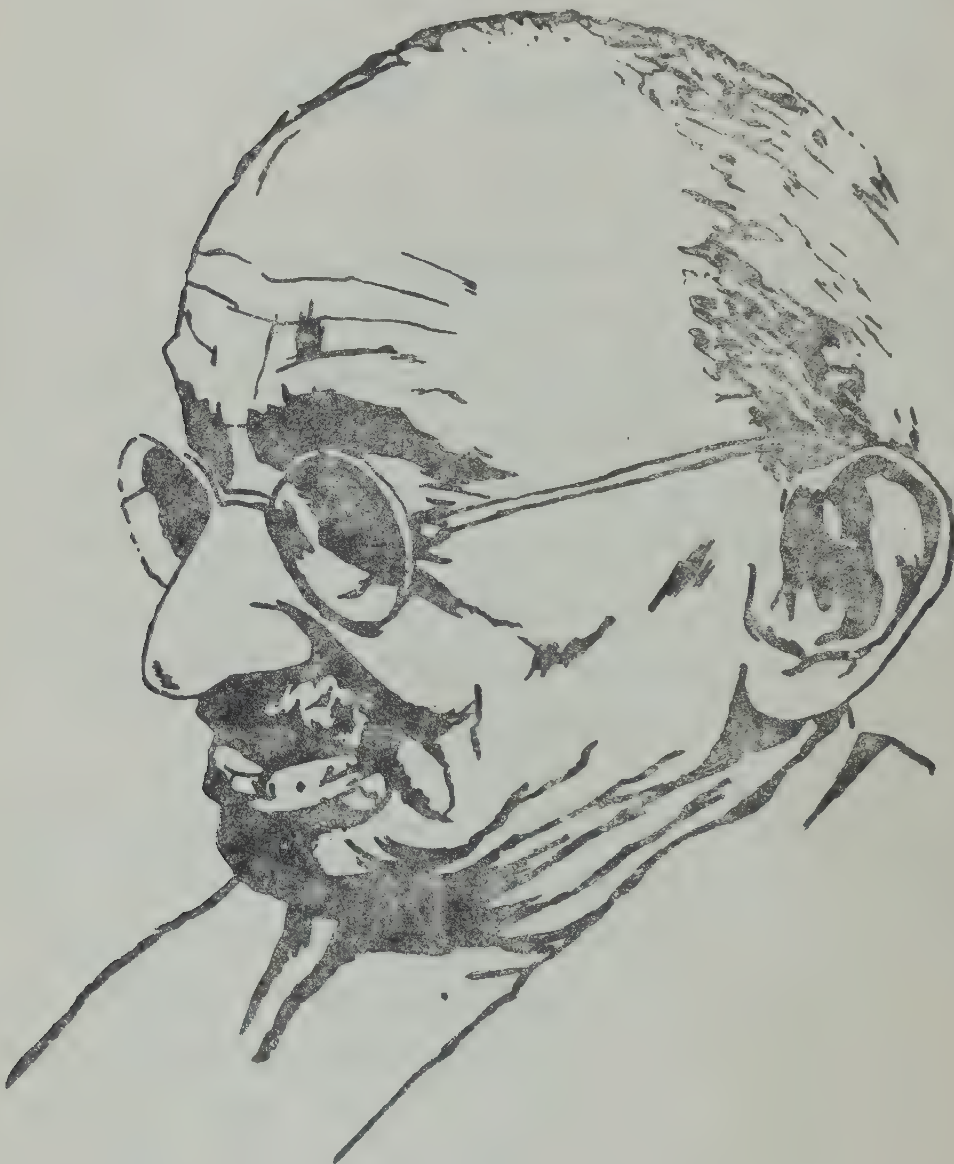
: १ :

महात्मा गान्धी

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्राण, विश्व-वन्द्य महात्मा गाँधी का नाम आज भारत के आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं। उन्होंने जिस असहयोग आन्दोलन के द्वारा भारतीय स्वाधीनता का संग्राम छेड़ा, वह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। विश्व चकित है कि उस दुर्बल शरीर में इतनी महान् आत्म-ज्योति किस प्रकार विकसित हो सकी, परन्तु भारतीयों के लिये तो सबसे अधिक दुःख का विषय यह है कि जिस महापुरुष को अंग्रेजी सरकार का दमन-चक्र स्पर्श न कर सका उसे देश के एक क्षुद्र मानव ने बिल्कुल समीप पहुँच कर गोली से मार दिया। आज वह साबरमती का सन्त इस संसार में नहीं है किन्तु युग-युग तक भारतीय जनता उससे अनुप्राणित होती रहेगी।

महात्मा गाँधी का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के पोरबन्दर(सुदामापुरी) नामक स्थान में 2 अक्टूबर सन् १८६९ ई० को हुआ था। आपका नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी था। उस समय गाँधीजी के पिता श्री करमचन्दजी पोरबन्दर रियासत में दीवान थे। गाँधीजी के पिता अत्यन्त सरल, धर्मात्मा और निर्लोभी व्यक्ति थे। रियासत के उच्चपदस्थ कर्मचारी होते हुए भी उन्होंने कभी उत्कोच स्वीकार नहीं किया। महात्मा जी की पूज्य माता पुतलीबाई भी आदर्श रमणी थीं। वे सच्चरित्र, धार्मिक, उपवास और व्रतादि करने वाली, गृहकार्य में कुशल माता थी। माता-पिता के यही गुण महात्माजी में आगे चलकर विशेष रूप से विकसित हुए, इसमें सन्देह नहीं।

महात्मा जी की प्रारम्भिक शिक्षा में एक विशेष बात निर्विवाद रूप से यह थी कि अन्य विद्यार्थियों की भाँति वे असत्य भाषी न थे।



यदि कोई कार्य वे न कर पाते तो दण्ड से भयभीत न होकर, उसके सम्बन्ध में सत्य कह दिया करते थे। वैसे वे पढ़ने-लिखने में इस

अवस्था में अधिक तेज न थे। पोरबन्दर से उनके पिता ने उन्हें राजकोट भेज दिया। वहाँ वे एक पाठशाला में भरती हो गये। इसी काल में उन्होंने 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटक पढ़ा और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक देखा। महात्माजी ने उसी समय शिक्षा ग्रहण की कि माता-पिता की सेवा करना और सत्य पर दृढ़ रहना प्रत्येक बालक का कर्त्तव्य है, जिसे पालन करने का मैं भी प्राणपण से प्रयत्न करूँगा। महात्माजी की महानता का रहस्य उनके एक इसी सद्गुण में निहित है कि वे किसी बात को पढ़कर उस पर मनन करते थे और तदनुकूल आचरण करने का व्रत भी ले लेते थे।

विद्यार्थी जीवन में ही, १३ वर्ष की अपरिपक्व अवस्था में महात्माजी का विवाह, इनके पिता ने सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार कर दिया। इस समय गाँधीजी हाई स्कूल में पढ़ते थे। सदाचारी होने के कारण, वे अपने सहपाठियों और मित्रों के प्रीतिपात्र थे। पढ़ने–लिखने में भी उन्होंने अब पर्याप्त उन्नति करली थी। वे अपनी "आत्मकथा" में खेद के साथ स्वीकार करते हैं कि वे खेल–कूद में भाग न लेते थे, जिसका उन्हें आजीवन दुःख रहा। यद्यपि गाँधीजी ने खेल-कूद में भाग न लिया तथापि उनका स्वास्थ्य वृद्धावस्था तक अच्छा ही रहा क्योंकि वे सदाचारी रहे थे और यावज्जीवन खुली हवा में भ्रमण करने नियमपूर्वक जाते रहे।

यद्यपि महात्माजी किशोर अवस्था में भी सदाचारशील थे, तो भी कुसंग के कुप्रभाव से न बचे। अध्ययन काल में उन्हें कुछ ऐसे साथी मिल ही गये जिनके साथ उन्होंने पाँच-छह बार मांसाहार भी किया, ऐसा वे अत्यन्त गुप्तरूप से करते थे। अन्त में उन्हें अपने आचरण पर लज्जा हुई, अपने माता पिता से छिपा कर मांसाहार करने के कारण वे दुखी हुये और उन्होंने सदा के लिये

उसे छोड़ दिया। माता-पिता के प्रति इतनी गम्भीर अनुरक्ति होने के कारण ही वे इस दुर्व्यसन से बच सके। विवाह के कुछ दिन बाद वे सिगरेट भी पीने लगे थे, किन्तु माता-पिता की अगाध भक्ति ने यहाँ भी उन्हें सहारा दिया और उन्होंने एक बार इस आदत को छोड़ कर जीवन भर सिगरेट पीने वाले मनचले युवकों का साथ नहीं किया। एक बार उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता का कर्जा चुकता करने के लिये अपने हाथ के सोने के कड़े से एक तोला सोना भी निकाल कर बेच दिया था। अन्त में रहरह कर उनके हृदय में इस अनर्थ के लिये घोर वेदना होने लगी। उन्होंने एक पत्र लिखकर सारी बातें अपने पिता को प्रकट कर दीं और क्षमा याचना की। पिता ने पुत्र की महत्ता को पहिचाना, उनकी आँखों से आँसू टपकने लगे और उन्होंने गाँधीजी को शुद्ध अन्तःकरण से आशीर्वाद देकर उनका अपराध क्षमा कर दिया।

महात्माजी की आयु केवल 16 वर्ष की थी जब उनके पिता भगंदर रोग से पीड़ित हो स्वर्गवासी हुए। महात्माजी के दोनों भाई उस समय पढ़ना-लिखना छोड़ चुके थे। पोरबन्दर रियासत की दीवानगिरी उनके परिवार में पीढ़ियों से चली आ रही थी। उस पद को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि महात्माजी विलायत जाकर शिक्षा प्राप्त करें। किन्तु महात्माजी की आर्थिक अवस्था ऐसी न थी कि वे विलायत यात्रा कर सकें। बड़ी कठिनाई से उनके ज्येष्ठ भ्राता ने रुपये की व्यवस्था की और वे इंगलैंड जाने की तैयारी करने लगे। गांधीजी की माता पुतलीबाई ने इंगलैंड-यात्रा करते समय उनसे प्रतिज्ञा ले ली थी कि वे वहाँ मांसाहार न करेंगे, शराब न पियेंगे तथा अन्य किसी दुर्व्यसन में लिप्त न होंगे। महात्माजी ने इस प्रतिज्ञा का इंगलैंड में अक्षरशः पालन किया।

इस समय तक महात्माजी के धार्मिक विचारों ने एक निश्चित् रूप ले लिया था। वे राम-नाम का महत्त्व स्वीकार करते थे और

ऐसा अभ्यास भी करने लगे थे कि उनकी श्वास के साथ, सोते-जागते, उठते-बैठते राम-नाम निकलता रहे। सिद्धान्त रूप में, वे सब धर्मों का समान रूप से आदर करते थे और उनकी दृष्टि में जैन, ईसाई और पारसी सभी धर्म मानव-कल्याण को लेकर चलने वाले धर्म थे। वे किसी धर्म के देवताओं की निन्दा न करते थे और न सुनते थे। गाँधीजी ने इंग्लैण्ड में पहुँचकर शिक्षा प्रारंभ करदी। उन्होंने मित्रों के बार-बार आग्रह करने पर भी मांसाहार नहीं किया और न मदिरा सेवन ही। वहाँ उन्होंने प्रारम्भ में नृत्य-कला का अभ्यास अवश्य किया, परन्तु शीघ्र ही, उन्हें नृत्य से विरक्ति भी हो गई। इस प्रकार लगभग तीन वर्ष विलायत में रह कर उन्होंने बैरिस्टरी पास की और वे स्वदेश लौटे।

महात्माजी ने बम्बई में रहकर वकालत प्रारम्भ की किन्तु वे अपनी संकोच और लज्जाशील प्रकृति के कारण असफल वकील सिद्ध हुए। निराश होकर उन्होंने किसी पाठशाला में अध्यापन कार्य करना चाहा, किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी कहीं नियुक्ति न हो सकी। अन्ततोगत्वा राजकोट में आकर अर्जी दावा लिखने का कार्य करने लगे जिससे उन्हें लगभग ३०० रु० प्रति मास की आय होने लगी। इसी अवसर पर उनका पोरबन्दर के अंग्रेज पोलिटिकल ऐजेण्ट से झगड़ा हो गया, जिससे, वे एक पूर्व परिचय के आधार पर, अपने अंग्रेज की सिफारिश लेकर मिलने गये थे। उसने गाँधीजी को बंगले से बाहर निकलवा दिया। अब तो गाँधीजी को राजकोट में रह कर वकालत करना भी असम्भव हो गया।

इसी समय उन्हें दक्षिण अफ्रीका से एक अभियोग में परामर्श देने और कार्यवाही करने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। वेतन भी अच्छा था, अतः गाँधीजी ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और सन् १८९३ ई० के अप्रेल मास में वे दक्षिण अफ्रीका को रवाना

हुए । मई में वे नैटाल के डरबन बन्दरगाह पर उतरे । वहां के एक धनी मानी सेठ अब्दुल्ला के यहां वे अतिथि बनकर रहे । महात्माजी ने अल्पकाल में ही वहां यह अनुभव किया कि अफ्रीका निवासी भारतीयों का जीवन बड़ा संकटमय और अपमानपूर्ण है। अभी अफ्रीका में आये हुए महात्माजी को केवल तीन दिन ही हुए थे कि उन्हें सेठ अब्दुल्ला डरबन न्यायालय दिखाने ले गये । न्यायाधीश ने उन्हें बड़ी कड़ी दृष्टि से देखा और अपनी पगड़ी उतारने को कहा । भारतीयों के लिये वहां शिष्टाचार निर्वाह का यह साधारण नियम था । गांधीजी ने निष्कारण पगड़ी उतारने से इन्कार कर दिया, परिणामतः उन्हें न्यायालय से बाहर निकलना पड़ा । इसके विरुद्ध उन्होंने समाचार-पत्रों में कुछ लेख भी लिखे । लोगों में प्रथम बार गांधीजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई । उन्होंने समझा कि यह दुबला पतला भारतीय बैरिस्टर कुछ स्वाभिमान भी रखता है ।

कुछ समय के पश्चात् एक अन्य अभियोग में कार्यवाही करने के लिये सेठ अब्दुल्ला ने उन्हें प्रिटोरिया भेजा । वे प्रथम श्रेणी के यात्री थे । रात को ६ बजे गाड़ी नैटाल की राजधानी मेरीत्सबर्ग पहुँची । उसी समय एक गोरा यात्री भी, उस डब्बे में यात्रा के लिए प्रविष्ट हुआ । उसने एक भारतीय को इस प्रकार सम्मानपूर्वक यात्रा करते देख अपना अपमान समझा । उसने स्टेशन के अधिकारियों से स्थान रिक्त कराने के लिए कहा । जब गाँधीजी ने अधिकारियों की बात न मानी तो एक पुलिस के सिपाही ने उन्हें धक्का देकर नीचे उतार दिया, उनका सामान भी फैंक दिया गया । गांधीजी रात-भर शीत में ठिठुरते वेटिंग रूम में बैठे रहे । गांधीजी ने रेलवे के उच्च अधिकारियों को तार द्वारा इस दुर्घटना की सूचना दी किन्तु कोई परिणाम न निकला । आगे

चलकर जब गांधीजी चार्ल्स टाऊन पर उतरे तो वहां भी उन्हें एक कटु अनुभव हुआ। वहाँ के एक अंग्रेज कोचवान ने गाँधीजी का अकारण अपमान किया और उन्हें पीटा। इस प्रकार निरन्तर अपमानित होकर गाँधीजी की आहत आत्मा विद्रोही बन बैठी।

इसी समय भारतीय श्रमिकों पर अफ्रीका की सरकार के द्वारा २५ पौंड प्रति वर्ष कर लगाया गया। भारतीय सरकार के सम्मुख जब यह नियम आया तो उसने उक्त कर को घटा कर ३ पौंड प्रति वर्ष कर दिया, किन्तु यह भी अन्याय था। गाँधीजी ने नैटाल की भारतीय काँग्रेस की ओर से इसका विरोध कराया और श्रमिक वर्ग में भी इसके विरुद्ध प्रचार करने लगे। इस प्रकार प्रथम बार गांधीजी सार्वजनिक नेता के रूप में आये। इस प्रकार समय वे विचार-विमर्श करने के लिये, भारत में आकर कई भारतीय नेताओं से भी मिले। इस प्रकार वे अपना निश्चित् मत बना कर फिर दक्षिण अफ्रीका जाने की तैयारी करने लगे।

गांधीजी सपरिवार अफ्रीका को रवाना हुए, किन्तु गोरी जनता उनसे अत्यधिक आतंकित हो गई थी, वह नहीं चाहती थी कि गांधीजी अफ्रीका आवें। अतः प्रथम तो उन्होंने उनके मार्ग में ही बाधा ही डाल दी, किन्तु जब वे असफल हुए तो अफ्रीका में उन्होंने गाँधीजी को खूब पीटा। यह दुर्घटना अखबार में छपी तो इंग्लैण्ड की सरकार के प्रधानमंत्री श्री चैम्बरलेन ने नैटाल को तार दिया कि इस दुर्घटना की जाँच की जावे और अपराधियों को दण्डित किया जाय। किन्तु गाँधीजी ने उन पर किसी प्रकार का अभियोग चलाना अस्वीकार कर दिया। गाँधीजी के शत्रु उनकी इस क्षमाशीलता के कारण अपने कुकृत्यों पर लज्जित हुए। इस प्रकार महात्माजी ने प्रथम बार संसार के सम्मुख प्रेम और क्षमाशीलता का एक विचित्र उदाहरण रखा।

कुछ काल के पश्चात् अफ्रीका में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध वहाँ के बोअर लोगों ने विद्रोह किया । युद्ध के अवसर पर भारतीयों की एक टुकड़ी लेकर गांधीजी आहतों की सेवा करने लगे । उन्होंने घायल अंग्रेजों की सब प्रकार से मदद की । इसका प्रभाव उन पर बहुत पड़ा । गांधीजी एक बार फिर प्रवासी भारतीयों के प्रीतिपात्र बन कर स्वदेश लौटे ।

किन्तु गाँधीजी को एक बार फिर अफ्रीका में जाकर सत्याग्रह आन्दोलन करना पड़ा । यह सत्याग्रह आन्दोलन संसार के इतिहास में विचित्र था । एक ओर प्यारे प्राणों की बलि देकर भी काले कानूनों को मानने के दृढ़ प्रतिज्ञ भारतीय थे और दूसरी ओर नौकरशाही का दमन-चक्र सहस्त्रों भारतीय संगठित होकर इस आन्दोलन में भाग लेने लगे । सरकार ने निरीह भारतीयों पर गोलियाँ बरसाईं और अनेक प्रकार की घोर यंत्रणाएँ दीं । महात्मा जी और उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा को प्रथम बार जेल जाना पड़ा । उन्हें भी बन्दी जीवन में तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। किन्तु अन्त में इतनी बड़ी सुसंगठित शक्ति के आगे सरकार को झुकना पड़ा । महात्माजी के साथ एक समझौता हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के कष्टों का कुछ शमन किया गया । इस सत्याग्रह में गांधीजी के साथ कुछ भले मानस गोरे भी थे ।

दक्षिण अफ्रीका में शान्ति हो जाने पर गांधीजी भारत आये । बम्बई में उनका शानदार स्वागत हुआ । फिर वे पूना पहुँच कर गोखलेजी के पास रहने लगे । इसी समय पूना से राजकोट जाते समय उन्होंने सुना कि वीरम गाँव की जनता बड़े कष्ट में है । वे इस सम्बन्ध में वायसराय से मिले और उनके कष्टों का निवारण हो गया । महात्माजी का भारत में यह सर्व प्रथम सार्वजनिक कार्य था ।

इसके पश्चात् महात्माजी एक के बाद एक सार्वजनिक कार्य

करते गये । चम्पारन में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ के गोरे भूस्वामी कृषकों को बड़ा कष्ट देते हैं । उन्होंने वहाँ के गोरों को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वे न माने तो महात्माजी सत्याग्रह आंदोलन के लिये तैयार हो गये । पहले तो महात्माजी को चम्पारन छोड़ने की आज्ञा मिली, किन्तु जब वे इस आज्ञा को भंग करने के लिये कटिबद्ध हो गये तो सरकार का साहस उन्हें बन्दी बनाने का न हुआ । अन्त में कृषकों का कष्ट हरण हुआ और वे प्राचीन नियम जिनके अनुसार कृषकों पर अत्याचार किया जाता था रद्द कर दिये गये ।

महात्माजी ने अहमदाबाद मिलों के मजदूरों की वेतन-वृद्धि की भी माँग की । यद्यपि अहमदाबाद के कई मिल अधिकारियों के साथ उनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था, परन्तु सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत मैत्री के लिये कोई स्थान नहीं । जब महात्माजी ने देखा कि अधिकारी लोग श्रमिकवर्ग की मानवोचित माँगों पर भी ध्यान नहीं देना चाहते तो उन्होंने मजदूरों को हड़ताल करने का परामर्श दिया । मजदूरों ने हड़ताल कर दी और लगभग दो सप्ताह तक दृढ़तापूर्वक अपनी माँग पर डटे रहे, किन्तु अन्त में भूख-प्यास के दारूण कष्ट से श्रमिकों का साहस टूटने लगा । इस पर गांधीजी ने स्वयं तीन दिन का उपवास किया । चौथे दिन समझौता हो गया, मजदूरों की अधिकांश माँगें स्वीकार करली गईं । महात्माजी ने वहाँ एक मजदूर दल की स्थापना की जो आज भी उनकी न्यायोचित अधिकारों की रक्षा करने में तत्पर है

गांधीजी ने गुजरात के खेड़ा जिले में भी अकाल पीड़ितों की रक्षा की और सरकार को वहाँ आर्थिक सहायता देने को विवश किया । इस प्रकार भारत आते ही महात्माजी ने सत्याग्रह का प्रयोग भारतीय सरकार पर करना प्रारम्भ कर दिया । उन्हें

निरंतर सफलतायें मिलती गईं और भारतीय उन्हें सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखने लगे ।

प्रथम यूरोपीय महासमर की ज्वाला से सम्पूर्ण संसार त्रस्त था । महात्माजी ने बड़े धैर्यपूर्ण विवेक के साथ, जर्मन अत्याचारियों को पराजित करने में भारतीय सरकार की धन-जन से सहायता की । युद्ध समाप्ति पर, भारतीयों को उनकी सेवा के उपलक्ष में रौलट एक्ट नामक एक काला कानून पुरस्कार रूप में मिला । इससे भारत में ब्रिटिश शासन और भी दृढ़ हो गया । महात्माजी ने इसके विरोध में एक विज्ञप्ति निकाली और भारतीयों को सारे देश में हड़ताल करने, उपवास करने तथा सभाएँ और प्रदर्शन करने का आदेश दिया । सम्पूर्ण देश ने तदनुकूल आचरण किया । देश के हिन्दू-मुसलमान नेता सभी गांधीजी के साथ थे । सरकार ने भी दमन करने में अपनी शक्ति का पूरा परिचय दिया । निरपराध प्रदर्शनों पर, एवं सभाओं में गोलियाँ बरसा कर भीड़ को तितर-बितर किया गया । इसी समय पंजाब का सुप्रसिद्ध हत्याकांड हुआ, जिसमें एकत्रित भीड़ पर जनरल-ओ-डायर ने बड़ी नृशंसता के साथ आक्रमण किया । निरीह और भोले बालक भून डाले गये, स्त्रियों और वृद्धों पर बेंत के भीषण प्रहार पड़े, और कांग्रेसी नेताओं को बन्दी बनाकर अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये । महात्माजी पंजाब की ओर चले तो उन्हें गिरफ्तार कर बम्बई छोड़ दिया गया । अंत में गांधीजी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध आंदोलन को स्थगित कर दिया । जनता धन-जन की हानि और अपमानों की अभूतपूर्व वेदना से तड़प रही थी, महात्माजी के इस नये आदेश से क्षुब्ध हो उठी । उसने अपने प्यारे नेता का तिरस्कार किया परन्तु महात्माजी ने तो केवल सरकार को भूल सुधार करने का अवसर भर दिया था ।

महात्माजी ने देखा कि ब्रिटिश सरकार अत्याचार से विमुख नहीं होती तो उन्होंने सितम्बर सन् १९२० ई० में, कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन के अवसर पर, कलकत्ते में, असहयोग का प्रस्ताव रक्खा । यह प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ । इसके अनुसार महात्माजी ने एक विज्ञप्ति निकाली कि देशभक्त भारतीय ब्रिटिश सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करें । वकील वकालत करना छोड़ दें । उपाधिधारी अपनी उपाधियां लौटा दें और स्कूल तथा कॉलेज बन्द कर दिए जाँय । महात्माजी ने इसके साथ ही बारडोली से सत्याग्रह प्रारम्भ करने की सूचना सरकार को दे दी । महामना मालवीयजी ने प्रयत्न किया कि सरकार के साथ समझौता हो जाय किन्तु वे असफल रहे ।

बारडोली सत्याग्रह के प्रारम्भ होते ही, देश में सर्वत्र उपद्रव होने लगे । चोरी-चौरा ग्राम में (गोरखपुर) जनता की एक क्षुब्ध भीड़ ने बाईस पुलिस वालों को जीवित जला दिया । गांधीजी ने जनता की इस अनुशासन हीनता से खिन्न होकर सत्याग्रह स्थगित कर दिया, जिससे एक बार फिर उनके विरुद्ध, वातावरण की सृष्टि हुई, किन्तु महात्माजी पर्वत के समान अटल थे । इस प्रकार आंदोलन स्थगित होने पर सरकार ने उन्हें बन्दी बना लिया और उन्हें इस बार छह वर्ष के लिये कारावास भेज दिया ।

सन् १९२४ ई० में, महात्माजी के पेट में फोड़ा हुआ । सरकार ने भयभीत होकर उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया । बाहर आकर उन्होंने देखा कि अंग्रेज महाप्रभुओं की भेद-नीति के कारण देश में सर्वत्र साम्प्रदायिक उपद्रव हो रहे हैं । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न में अपने प्राणों की बाजी लगादी और २१ दिन का उपवास किया । देश में सर्वत्र हिन्दू-मुसलमान गले मिलने लगे ।

दिसम्बर सन् १९२४ में गांधीजी, बेलग्राम में कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने सम्पूर्ण देश का दौरा किया। उसी वर्ष कांग्रेस के प्रमुख कार्य-कर्त्ता चितरंजनदास का स्वर्गवास हुआ। गांधीजी ने उनका स्मारक बनवाने के लिये दस लाख रुपये की राशि एकत्रित की।

लगभग ६ वर्ष तक मौन रहने के बाद, साबरमती का यह संत अब की बार नमक का कानून तोड़ने को सन् १९३० ई० में बड़े ही प्रभावशाली रूप में बाहर निकला। कांग्रेस ने इस वर्ष पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। गांधीजी ने वायसराय के पास ११ शर्तें लिखकर भेज दीं। एक साल के सत्याग्रह के बाद, गाँधी-इरविन समझौता हुआ, जिसके अनुसार भारतीय नेताओं को इगलैंड में गोलमेज सभा में आमंत्रित किया गया। भारत के बड़े-बड़े नेता गोलमेज कान्फ्रेन्स में सम्मिलित हुए, उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव सरकार के सम्मुख रखा। किन्तु गांधीजी को निराश होना पड़ा। वे इंग्लैंड से भारत लौट आये और पुनः सत्याग्रह का विचार करने लगे। इस समय सरकार ने भीषण दमन किया और महात्माजी को गिरफ्तार कर लिया।

जेल से मुक्त होकर महात्माजी ने देखा कि सरकार भारतीय हिन्दू-समाज के अभिन्न अङ्ग अछूतों को उससे अलग करने का प्रयत्न कर रही है। सरकार ने एक नियम के अनुसार सवर्ण हिन्दुओं और अछूतों के अलग-अलग निर्वाचन स्वीकार किये थे। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की एक महान् चाल थी जो महात्माजी ने सफल न होने दी। उन्होंने ज्योंही आजीवन अनशन करने का निश्चय किया, त्योंही देश के कोने-कोने से अछूतों के असंख्य तार भारतीय सरकार के पास पहुँचे जिनमें उन्होंने अपने को हिन्दू-समाज का ही अभिन्न अङ्ग घोषित किया। महात्मा गांधी ने

२१ दिन का उपवास किया। तदनन्तर उन्होंने देशवासी सवर्ण हिन्दुओं से अछूतोद्धार की अपील की। इस समय उन्होंने हरिजन संघ नामक संस्था की भी स्थापना की। इस प्रकार समाज की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर अछूतों को उनके अधिकार दिलाने के प्रयत्न तो महात्माजी ने यावज्जीवन किये। वे स्वयं अपने को 'सब से बड़ा भंगी' कहते थे। महात्माजी की अछूत-सेवा भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी।

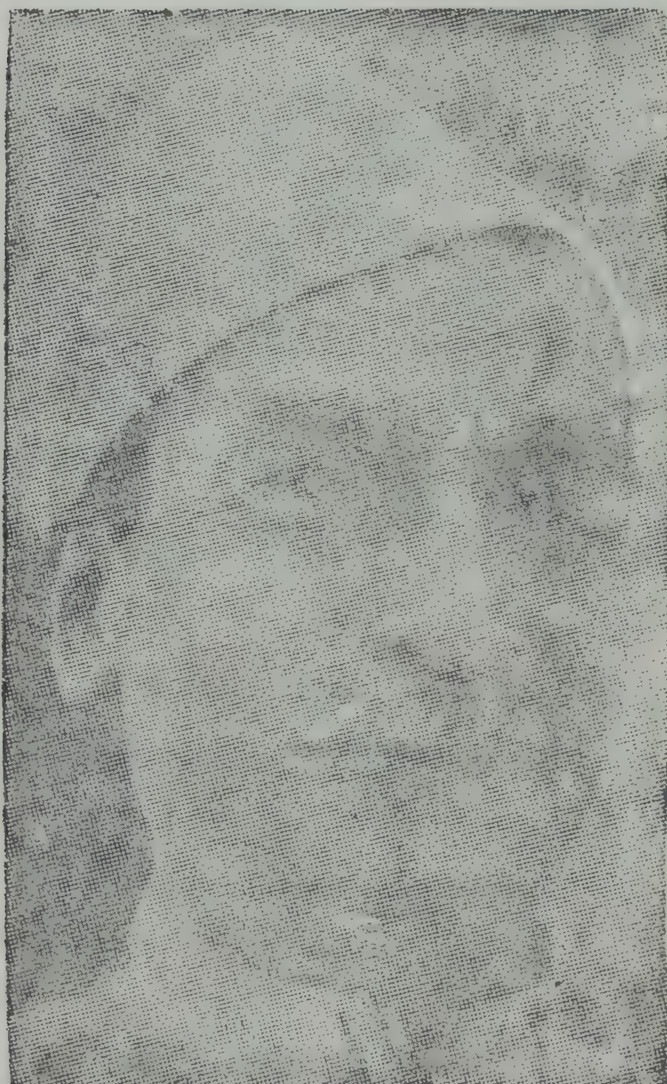
सन् १९४२ में, द्वितीय महासमर के बाद महात्माजी ने फिर पूर्ण स्वाधीनता का संग्राम छेड़ा। यही उनके जीवन का अंतिम महान् आन्दोलन था। यह 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके परिणाम स्वरूप ९ अगस्त सन् १९४२ को गांधीजी तथा देश के सभी सम्मानित नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सरकार की इस अदूरदर्शी नीति से सर्वत्र अराजकता फैल गई। देश में महा भयानक क्रांति का सूत्रपात हुआ। सरकार ने इसका दोष महात्माजी के मत्थे मढ़ा। अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिये महात्माजी ने आगाखां महल में एक लम्बा उपवास किया जिससे उनके प्राण संकट में पड़ गये।

अंग्रेज जान चुके थे कि इस प्रकार भारत पर मनमाना शासन नहीं लादा जा सकता, अस्तु उन्होंने भारत को छोड़ जाने का निश्चय कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत की पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दी गई और इस प्रकार महात्माजी का चिर-स्वप्न सत्य हुआ।

:२:

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

महात्मा गांधी के व्यक्तिगत और राजनीतिक जीवन से प्रेरणा



प्राप्त करने वाले व्यक्तियों में श्री राजेन्द्र प्रसादजी का स्थान

अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि वास्तविकता की उपेक्षा न की जाय, तो स्वीकार करना पड़ेगा कि महात्माजी के आदर्शों और सिद्धांतों का प्रत्येक क्षेत्र में अक्षरशः पालन करने वाले केवल राजेन्द्रप्रसाद ही थे। उनका आद्यन्त राजनीतिक जीवन ही इस सत्यता का ज्वलन्त प्रमाण है।

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का जन्म बिहार प्रान्त में स्थित सारण जिले के जीरादेई नामक ग्राम में सन् १८८४ ई० में हुआ था। आपके पिता मुं० महादेव सहायजी बड़े साधु प्रकृति के गुणी व्यक्ति थे, उन्हें चिकित्सा-शास्त्र की आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों का साधारणतः अच्छा ज्ञान था और वे परोपकार की दृष्टि से निर्धन व्यक्तियों की मुफ्त चिकित्सा कर दिया करते थे। डाक्टर साहब की पूज्य माताजी भी बड़ी सरल हृदय और दयालु थीं। डाक्टर साहब अपने अग्रज बाबू महेन्द्र प्रसाद का बाल्य-काल से ही आदर करते थे जो निरन्तर उनके जीवन काल तक बना रहा।

डाक्टर साहब का विद्या आरम्भ संस्कार उर्दू से हुआ। ६-७ वर्ष की आयु में, वे गाँव के एक मौलवी के पास भेजे गये, जिसकी देख-रेख में उन्होंने उर्दू-फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। यह स्मरण रखना चाहिए कि उन दिनों, कायस्थ परिवारों में विद्यारंभ उर्दू से ही होता था।

नौ वर्ष की आयु में श्री राजेन्द्र प्रसादजी छपरा जिले के एक स्कूल में प्रविष्ट हुए और वहीं से इन्होंने दसवीं कक्षा (छोटी-परीक्षा) की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९२० ई० में आपने कलकत्ता यूनिवर्सिटी से प्रथम श्रेणी में सर्व प्रथम स्थान पा कर, ऐन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। आपका विद्यार्थी जीवन सदैव बड़ा शानदार रहा और उसमें अनेकों स्वर्णपदक, भिन्न-भिन्न पुरस्कार एवं

छात्रवृत्तियाँ प्राप्त की। विद्यार्थी जीवन में उनकी उन्नति का मूल कारण उनका नियमित जीवन था। नियम-पालन का वह आदि, पाठ उनके जीवन में सदैव सुख-शान्ति की धारा बहाता रहा।

यद्यपि श्री राजेन्द्र प्रसाद जी का विवाह केवल १२ वर्ष की छोटी आयु में सम्पादित हो गया था, तथापि सौभाग्यवश इनके अध्ययन में बाधा न पड़ी और इन्होंने एम० ए० पास कर लिया। एम० ए० के साथ ही वकालत का अध्ययन भी जारी रखा, इस प्रकार ये एम० ए०; एल० एल० बी० बनकर पटना हाई कोर्ट में वकालत करने की कल्पना करते थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने वकालत प्रारम्भ भी की, किन्तु भाग्य तो इनके लिये और ही कार्यक्षेत्र तैयार कर रहा था।

सन् १९०४ में बंग-भंग हुआ। बंगाल में सरकार के इस विच्छेद-निश्चय से बड़ा असंतोष फैला। युवकों ने सभायें कीं और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की प्रतिज्ञा की। राजेन्द्रबाबू तो स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग पहले से ही करते थे। उन्होंने भी प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार धीरे-धीरे राजेन्द्रबाबू को सार्वजनिक कार्यों का चस्का विद्यार्थी जीवन से ही लग रहा था। वे पढ़ने-लिखने में योग्य और स्वभाव से नम्र और कार्य-कुशल थे। अस्तु उन्होंने अपने मित्रों के सम्मुख बिहार विद्यार्थी संघ स्थापित करने की योजना रखी। यह योजना पूर्ण सफल हुई, विद्यार्थी संघ पनपता गया और राजेन्द्र प्रसादजी के प्रयत्नों से इसका महान् सम्मेलन पटना कॉलेज में उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् श्री शर्फुद्दीन की अध्यक्षता में हुआ। स्मरण रखना चाहिए कि उस समय विद्यार्थियों का कोई भी संघ देश में न था। अतः इसे उनकी सूझ का

उदाहरण मानना पड़ेगा। यह बिहार विद्यार्थी संघ १९०६ से १९२० तक अपना कार्य करता रहा।

सन् १९०८ ई० में, कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर श्री राजेन्द्रजी स्वयं सेवक के रूप में उपस्थित थे, वहीं उन्होंने प्रथम बार सरोजिनी देवी, मालवीयजी और मि० जिन्ना के भाषण सुने। किन्तु अभी इस विद्यार्थी के हृदय में सार्वजनिक कार्यों के प्रति इतनी गम्भीर संवेदना न थी कि वह अपने कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े। यह उसका अध्ययन-काल था। दो वर्ष और व्यतीत हुए, माननीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले कलकत्ते पहुँचे। वे बिहार प्रान्तीय विद्यार्थी संगठन के कार्यकर्त्ता श्री राजेन्द्रप्रसादजी के नाम से परिचित थे। उन्होंने डाक्टर साहब को अपने पास बुलाया और राष्ट्रीय कार्य में हाथ बटाने को कहा। उनका उपदेश बड़ा मार्मिक और हृदयग्राही था, किन्तु राजेन्द्र प्रसाद को तो अभी अपनी वकालत की चिन्ता थी, अस्तु इस उपदेश का प्रभाव पड़ कर भी न पड़ा।

सन् १९११ ई० से राजेन्द्रबाबू कांग्रेस के नियमित सदस्य बन गये और उत्तरोत्तर उनका झुकाव देश-सेवा की ओर होता गया। इस प्रकार सार्वजनिक कार्य करते हुए उन्होंने अपने व्यवसाय को तो लगभग सन् १९१९ तक नहीं छोड़ा। डाक्टर साहब ने अपनी वकालत में भी निर्धनों का गला कभी नहीं घोंटा और यही कारण था कि जब वे वकालत छोड़-असहयोग आंदोलन में कूदे, तो उस समय उनके पास आर्थिक संचय कुछ न था।

देश-भक्ति की यह वेगवती धारा बड़े वेग से डाक्टर साहब के जीवन में प्रवाहित हुई, किन्तु यह आकस्मिक न थी। डाक्टर साहब के हृदय में इससे पूर्व समाज-सेवा की धुन थी। यद्यपि सामाजिक जीवन में उन्होंने नेतृत्व नहीं किया किन्तु एक सच्चे

सेवक के रूप में, समाज उनकी सेवाओं का आदर करता रहेगा। वकालत करते हुए उन्होंने निर्धन विद्यार्थियों की सेवा के लिये एक 'विद्यार्थी कोष' की स्थापना की थी जिससे निर्धन तथा योग्य विद्यार्थियों की पढ़ाई और भोजन के व्यय की व्यवस्था की जाती थी। सन् १९१४ ई० में बंगाल और बिहार की भीषण बाढ़ में श्री राजेन्द्र प्रसाद ने बाढ़-पीड़ितों की जो दिन-रात सेवा की वह चिरस्मरणीय रहेगी। कलकत्ता निवासी बिहारी सज्जनों से दान लेकर बाढ़-पीड़ितों के लिए धन-संग्रह किया जिससे वे उनको अन्न-वस्त्र जुटाने में समर्थ हो सके। इस प्रकार समाज-सेवा का कार्य तो वे निरन्तर करते रहे।

सन् १९१६ ई० में लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में बिहारी नेताओं ने गांधीजी को चम्पारन में कृषकों पर होने वाले अत्याचारों से अवगत किया। गांधीजी वास्तविक वस्तुस्थिति को समझने के लिए कलकत्ता आये और वहाँ पर डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद प्रथम बार गांधीजी के सम्पर्क में आये। जब गांधीजी को विश्वास हो गया कि चंपारन के अंग्रेज जमींदार कृषकों पर अमानुषीय अत्याचार करते हैं, तो उन्होंने सत्याग्रह के द्वारा विरोध करने की योजना बनाई। इस योजना के अनुसार कार्यकर्त्ताओं के छोटे-छोटे जत्थे एक प्रसिद्ध व्यक्ति की अध्यक्षता में सत्याग्रह करते थे। श्री राजेन्द्र प्रसाद भी ऐसे ही एक जत्थे का नेतृत्व करते थे। चम्पारन में डाक्टर साहब ने गांधीजी के साथ घोर परिश्रम किया, फलतः जब गांधीजी के आन्दोलन से लाखों किसानों का जीवन यंत्रणा मुक्त होकर सुखी हो गया तो श्री राजेन्द्र प्रसाद पर इसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा और उन पर गांधीवाद का पक्का रंग चढ़ गया।

इस प्रकार राजेन्द्रबाबू महात्माजी के सहयोगी बनकर कार्य करने लगे और उनके साबरमती आश्रम में भी कुछ काल रहे।

गुजरात के खेड़ा तालुके में जिस समय महात्माजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद उनके सहयोगी कार्यकर्त्ता थे।

प्रथम योरुपीय महायुद्ध की समाप्ति पर, भारतीय अपनी अमूल्य सेवाओं के बदले स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, किन्तु ब्रिटिश सरकार ने रौलट एक्ट के द्वारा उनका स्वप्न भंग कर दिया। समस्त भारत क्षुब्ध हो उठा। महात्माजी ने रौलट एक्ट विरोधी सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार किया और इस सम्बध में प्रमुख भारतीयों से हस्ताक्षर कराने के लिये एक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित किया। राजेन्द्रबाबू ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये और इस प्रकार वे अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिये उद्यत हो गये। किन्तु रौलट एक्ट विरोधी सत्याग्रह, किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण गांधीजी ने स्थगित कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद असहयोग आन्दोलन की आंधी चली। राजेन्द्रबाबू इस समय पटना हाई कोर्ट के अग्रणी वकीलों में थे, किन्तु उन्होंने उस समय वकालत छोड़ दी और महात्माजी के आदेशानुसार रचनात्मक कार्यों में लग गये। उन्होंने बिहार प्रान्त में शिक्षा-प्रचार का स्तुत्य प्रयास किया। उन दिनों बिहार में सर्वत्र उन्हीं की धूम थी, महात्माजी ने चर्खा चलाने और खादी पहिनने का आदेश दिया, तो बिहार के गाँव गाँव में चर्खे चलने लगे, उन्होंने तिलक स्वराज्य फण्ड के लिये दान माँगा, तो बिहार ने सबसे अधिक चन्दा दिया, मादक द्रव्यों के बहिष्कार की योजना बनी तो बिहारियों ने शराब और अफीम के ठेकों पर धरना देना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में इस समय राजेन्द्रबाबू ने प्रशंसनीय कार्य किया और बिहार में असहयोग आन्दोलन में सफलता के श्रेय केवल उन्हीं को है। जब इस आन्दोलन में

सामूहिक सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तो राजेन्द्रबाबू ने स्वयं सेवकों का एक विशाल दल प्रस्तुत कर दिया। इतना सब कुछ करते हुए भी, राजेन्द्र बाबू को उस समय जेल यात्रा का सौभाग्य प्राप्त न हो सका।

इधर महात्माजी ने ज्योंही असहयोग आन्दोलन रोका, सरकार ने उन्हें बन्दी बना लिया १० अप्रेल सन् १९२२ को महात्माजी कृष्ण मंदिर (जेल) जाते समय, भारतीय नेताओं को रचनात्मक कार्य करते रहने का आदेश दे गये। इस समय भारतीय नेताओं में इस कार्यक्रम को लेकर मतभेद हो गया। कुछ नेता, रचनात्मक कार्यों के अतिरिक्त, सरकारी धारा सभाओं में प्रवेश करने के पक्ष में थे, अतः वे सरकारी निर्वाचन में भी भाग लेना चाहते थे। उस समय राजेन्द्रबाबू ने महात्माजी के सच्चे अनुयायी की भाँति इस निश्चय का विरोध किया। काँग्रेस में दृढ़ता के साथ उन्होंने अपने पक्ष का समर्थन किया, परिणामतः उनके विपक्षियों ने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया। अब केवल गांधीजी के ही आदर्शों पर चलने वाले लोग कांग्रेस के सदस्य रह गये। राजेन्द्र-बाबू अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए। कुछ काल के पश्चात् विरोधी दल ने भी त्याग-पत्र वापिस लेकर कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार करली। सन् १९२४ में, पेट में फोड़ा हो जाने के कारण, गांधीजी कारावास से मुक्त कर दिये गये। उन्होंने बाहर निकल कर कांग्रेस की नीति निर्धारित करने का अधिकार विरोधी दल को दे दिया और स्वयं ठोस कार्यों की ओर अग्रसर हुए। राजेन्द्रबाबू उनके साथ थे, महात्माजी के आदेशानुसार उन्होंने बिहार में चर्खा संघ खोला और बड़े उत्साह के साथ खादी प्रचार करने लगे। बिहार के पश्चात् उन्होंने मद्रास में भी बड़ी तत्परता के साथ खादी प्रचार किया जिसकी प्रशंसा महात्माजी ने अपने पत्र 'यंग इण्डिया' में की है।

सन् १९२४ ई० में राजेन्द्रबाबू ने पटना म्युनिसिपल बोर्ड में सभापति के रूप में प्रवेश किया, वे इन अर्ध सरकारी संस्थाओं में सुधार करना चाहते थे, किन्तु वहाँ के जिलाधीश के अनुचित हस्तक्षेप के कारण असफल रहे। अपने सदुद्योगों से लाभ होते न देख वे त्याग-पत्र देकर बाहर आगये और अपना समय हिन्दी प्रचार और समाज सेवा में लगाने लगे। इस सम्बन्ध में आपने कई हिन्दी सम्मेलनों का सभापतित्व कर उनका मार्ग-प्रदर्शन किया।

सन् १९२७ ई० से आपकी विदेश यात्रा प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम आपने लंका यात्रा कर वहाँ के मुख्य स्थानों को देखा और भारत लौट आये। फिर एक अभियोग में कार्यवाही करने के लिये आपको इंगलैंड जाना पड़ा। ७ मार्च सन् १९२८ ई० को आपने इंगलैण्ड जाने के लिए कैसर हिन्द नामक जहाज पर जल-यात्रा प्रारम्भ कर दी और २४ मार्च को आप इंगलैण्ड पहुँच गये। इंगलैंड में निवास करते हुए आपने भारतीय वेश-भूषा को नहीं छोड़ा और प्रातःकाल शय्या त्यागकर स्नानादि नित्य कर्म से निवृत होना आपका नियम रहा।

इंगलैंड से लौटते हुए आप आस्ट्रिया पहुँचे और वहाँ के प्राट्स नामक नगर में आपने एक सभा में युद्ध विरोधी भाषण दिया। इसके पश्चात् आपने स्विट्जरलैंड की यात्रा की और वहीं पर फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक रोम्या रोलां से भेंट की। अपनी विदेश यात्रा में राजेन्द्रबाबू फ्रांस, इटली और जर्मनी आदि यूरोपीय देशों में भी गये और उन्होंने वहाँ के निवासियों के रहन-सहन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की। लन्दन में मोटर दुर्घटना से उनके एक साथी की मृत्यु हो गई, जिसके कारण वे दुखी होकर 'मुलतान' नामक जलयान से भारत लौट आये। इस विस्तृत भ्रमण ने आपको भारतीय स्वाधीनता संग्राम का एक अनुभवी सैनिक बना दिया।

सन् १९२९ ई० के सत्याग्रह-संग्राम में आपने बिहार में अपने गुरु-गम्भीर गर्जन से अपूर्व जागृति की और स्वयं सेवकों के दल के दल सत्याग्रह के लिये प्रस्तुत कर दिये। आत्मोत्सर्ग की अद्वितीय भावना को लेकर बिहार प्रान्त के कोने–कोने से, प्राणों की बाजी लगाने वाले दल बढ़े और अंग्रेजी अन्याय का उन्मूलन करने में वे सरकार की दमन-दुनाली का शिकार हुए। सारे देश में बिहार का द्वितीय स्थान रहा। स्वयं राजेन्द्रबाबू, यद्यपि दमा के कारण उनके स्वास्थ्य की अवस्था चिन्तनीय थी, कई बार इस सत्याग्रह में, कारावास की प्राचीरों में बन्दी रहे।

महात्माजी ने अछूतों के पृथक् निर्वाचन का विरोध किया और उन्हें हिन्दू-समाज का ही एक अभिन्न अंग घोषित किया। साथ ही, उन्होंने भारतीयों से, अछूतों के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों का निवारण करने के लिये मार्मिक अपील की, राजेन्द्रबाबू ने महात्माजी के इस पुण्य–कार्य में सबसे अधिक सहायता दी, बिहार में हरिजनों की शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध करने के लिये उन्होंने पाठशालायें खोलीं, और उनके रहन-सहन का धरातल ऊँचा करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी।

बिहार के तो आप अनन्य सेवक सदैव रहे, जब कभी वहाँ दैवी–प्रकोप हुआ, श्री राजेन्द्रबाबू सर्व-प्रथम आगे बढ़े। सन् १९३४ ई० में, बिहार के भीषण भूकम्प के समय आप कारावास में थे, दमे के कारण स्वास्थ्य गिर गया था, किन्तु जैसे ही आप मुक्त हुए, घटनास्थल पर पहुँच कर भूकम्प पीड़ितों की सेवा में लग गए। आपने औषधियों की व्यवस्था की, असंख्य आश्रयहीन प्राणियों को आश्रय प्रदान किया और बिहार के पुनर्निर्माण में सच्चा सहयोग दिया। जब बिहार के भूकम्प पीड़ितों के लिए सरकार ने रिलीफ़ कमेटी की स्थापना की तो आप उसके सभापति

बने । यद्यपि उस समय रोगशैय्या पर पड़े हुए आप अशक्त हो रहे थे, तथापि अपना कष्ट भूलकर पीड़ित बिहारियों की सेवा में संलग्न रहे ।

आप आरम्भ से ही साहित्यानुरागी थे और समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं का विचारपूर्ण लेख देते रहते थे । आपने कई प्रतिष्ठित पत्रों का सम्पादन भी बड़ी सफलता के साथ किया । सन् १९२० ई० में आपने 'देश' नामक पत्र का संपादन बड़ी कुशलतापूर्वक किया । आपकी दो पुस्तकें अत्यन्त सम्मानित हुई हैं — (१) चम्पारन में महात्मा गाँधी (हिन्दी) (२) इण्डिया अनडिवाइडेड (अंग्रेजी) । आपने अत्यन्त सुबोध और सरल शैली में 'आत्मकथा' भी प्रस्तुत की जिससे आपके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कई ज्ञातव्य बातें मालूम हुई ।

सन् १९४२ ई० के दमन-चक्र में राजेन्द्र बाबू भी पड़े और अन्य नेताओं के समान जेल भेज दिये गये । महायुद्ध के पश्चात्, जब ब्रिटेन ने अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण कर भारतीय स्वाधीनता की घोषणा की, तो राजेन्द्र बाबू ने नेहरू मंत्रिमण्डल में कृषि और खाद्य विभाग संभाला । उस समय देश की खाद्य स्थिति बड़ी चिन्तनीय थी किन्तु आपके सदुपयोग से भारतीयों की प्राण-रक्षा हुई । जब भारत का शासन विधान निर्माण करने के लिए विधान परिषद् बैठी तो आप उसके सभापति मनोनीत हुए ।

२६ जनवरी सन् १९५० को 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य' (Soverign Democratic Republic) की घोषणा की गई । सम्पूर्ण भारत में, लगभग एक हजार वर्ष के पश्चात्, फिर से स्वाधीनता की लहर दौड़ी । घर-घर दीपावली मनाई गई । भारत भूमि फिर से भारतीयों की हुई, भारतीयाकाश अपना हुआ, प्रकृति अपनी हुई, नदी-नाले पुष्पवृक्षादि सब अपने हो गये । अंग्रेजी छाया से भारतीय उन्मुक्त हुए । इस समय स्वतन्त्र भारत के प्रथम सभापति के

रूप में दिल्ली ने अपने प्यारे नेता राजेन्द्रबाबू का स्वागत किया। कितना शानदार स्वागत था वह ! बापू को खोकर मानो शोकसंतप्त भारत ने बापू की प्रतिकृति को अपना लिया और अपने पाप का प्रायश्चित कर डाला।

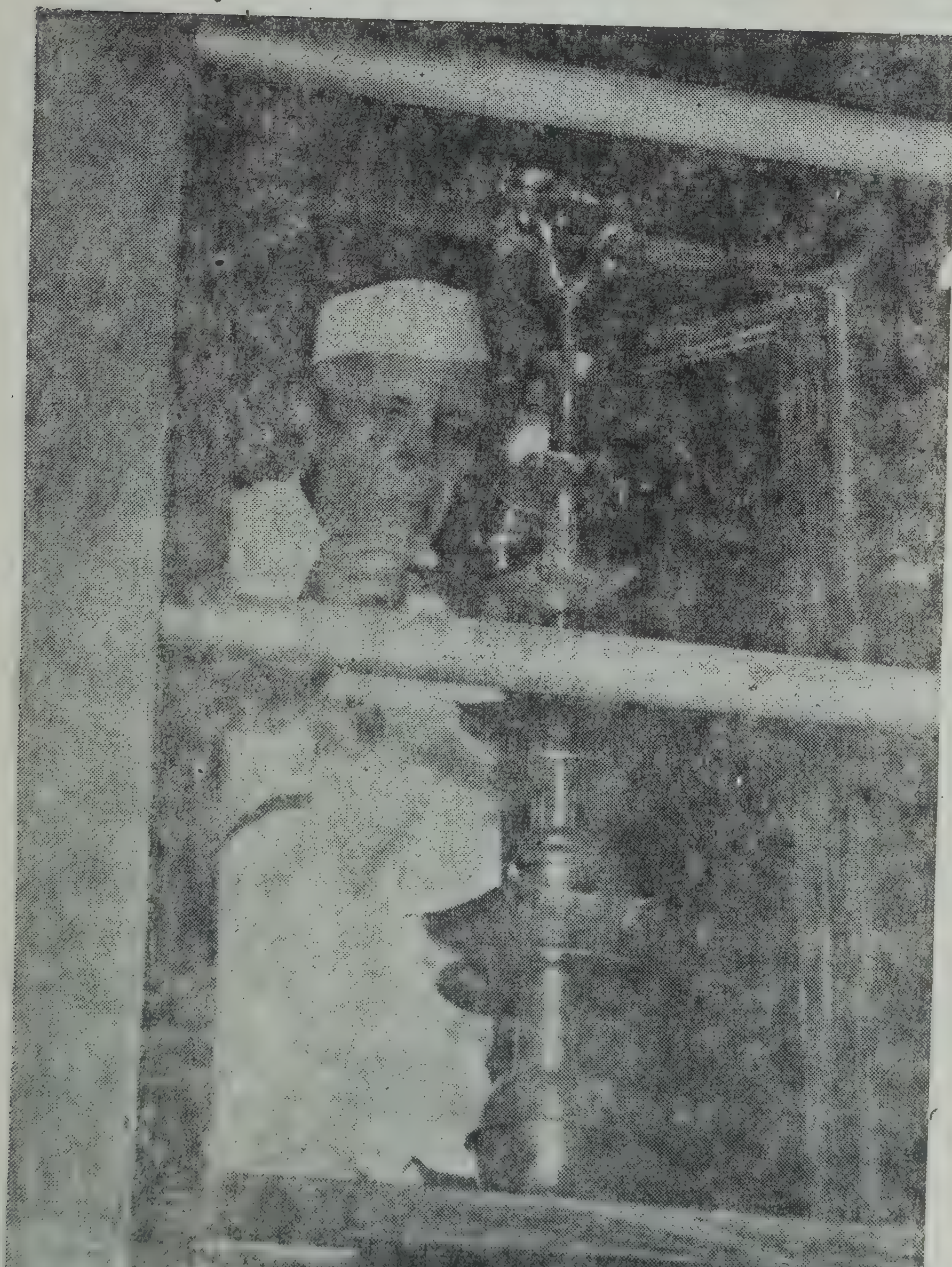
त्याग, सेवा और उच्चादर्श की सजीव प्रतिमा, राजेन्द्रबाबू स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। भारत को अपने घोर प्रशान्त नेता पर सदा गर्व है। जबसे आपने राजनीति में पदार्पण किया तब से आप भारतवासियों का मार्ग-प्रदर्शन करते रहे हैं। आपने दस वर्ष तक राष्ट्रपति पद को सुशोभित करते हुए मातृभूमि की अपूर्व सेवा की है।

दु:ख है कि भारत के इस महान् सेवाभावी सपूत का २८ फरवरी १९६३ को देहावसान हो गया।

——

: ३ :

पं० जवाहरलाल नेहरू



नर-नाहर जवाहर के स्वातन्त्र्य-घोष से आज समस्त विश्व प्रतिध्वनित हो उठा। कहते हैं, साधना की बच्चावस्था में साधक और साध्य एकाकार हो जाते हैं वस्तुतः हमें आज 'स्वाधीनता' और 'जवाहर' पर्यायवाची से प्रतीत होते हैं। जवाहर की साधना उच्च रही है, कारागार की उन अभेद्य अन्धकारमयी प्राचीरों में एक फूल-सा सुकुमार जीवन की कड़ी तपस्या करता रहा। कारागार की दीवालों को भेद कर, स्वातन्त्र्य रश्मियाँ भारतीय आत्माओं में प्रवेश कर गईं, आज भारतीय भाग्याकाश, स्वाधीनता की स्वर्णिम उषा से जगमगा उठा है। साधक का अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् एक हो गया।

प्रयाग के आनन्द भवन में, वैभव के उन्मुक्त वातावरण में, इस अमर विभूति ने, १४ नवम्बर सन् १८८९ को स्वर्गीय स्वरूप रानी नेहरू के गर्भ से जन्म लिया। पिता पंडित मोतीलाल नेहरू की अतुल अर्थवर्षिणी आय थी, बालक का पालन-पोषण राजकुमारों की तरह हुआ, माँ-बाप का इकलौता बेटा, किसी दिन उनकी गोद से हट कर, भारत माँ का इकलौता बेटा बन जायगा यह उस समय कल्पना के बाहर था।

श्रीमती स्वरूप रानी की, निर्धनों के प्रति दया, ममता, सरलता और धार्मिक उदारता ने एक ओर पंडित नेहरू के हृदय का निर्माण किया तो दूसरी ओर पंडित मोतीलाल नेहरू के विद्यानुराग, पश्चिमीय संस्कृति के प्रति आग्रह और विकसित मस्तिष्क में बालक जवाहर के बुद्धि पक्ष पर अमिट छाप लगा दी। वस्तुतः पंडित नेहरू के पूर्वात्व और पाश्चात्य संस्कार आकस्मिक न होकर जन्मगत है।

पंडित मोतीलाल नेहरू के ऊपर उन दिनों पश्चिमी भूत सवार था। उन्होंने प्रारम्भ से ही बालक जवाहर को पाश्चात्य

सभ्यता में दीक्षित कराने का निश्चय किया। बालक का अंग्रेजी धायों ने पालन-पोषण किया। बड़े होने पर, उनको शिक्षित करने के लिये एफ० टी० ब्रुक नामक एक यूरोपियन सज्जन की नियुक्ति हुई, किन्तु उन्होंने चार वर्ष के अध्यापन-काल में बालक जवाहर पर भारतीयता का रंग चढ़ाया, न कि पाश्चात्य सभ्यता का। हां अंग्रेजी की शिक्षा और नियमित कार्यक्रम पर अवश्य उन्होंने बल दिया। लगभग १५ वर्ष की आयु में जवाहरलाल इंगलैण्ड की हेरो विद्यापीठ में प्रविष्ट होकर अध्ययन करने लगे।

सन् १९०७ में, उक्त विद्यालय से आपने एन्ट्रेंस की परीक्षा पास की और तदनन्तर ट्रिनिटी कालेज (केम्ब्रिज) में प्रवेश कर आप विज्ञान का अध्ययन करने लगे। वहाँ से एम० ए० की परीक्षा पास कर श्री जवाहरलालजी ने सन् १९१२ में, 'इनर टेम्पुल' से बैरिस्ट्री की डिग्री प्राप्त की। अपने इंगलैण्ड प्रवास में जवाहर लालजी ने कई प्रमुख यूरोपीय सज्जनों से घनिष्ठ परिचय किया। शिक्षाकाल में तथा उनके पश्चात् आपने यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों का भ्रमण कर वहां शिक्षा दीक्षा, रहन-सहन और कला-कौशल का गम्भीर अध्ययन किया। चिन्तनशील होने के कारण, आपके मस्तिष्क पर स्वतन्त्र देशों की विचारधारा के संस्कार बद्धमूल हो गये।

देश-सेवा की तरंगों में बहते हुए तरुण जवाहर ने अध्ययनोपरान्त स्वदेश यात्रा की। सन् १९१६ ई० में देहली के पं० जवाहर लाल कौल की सुपुत्री कमला के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के एक वर्ष बाद, सुपुत्री इन्दिरा ने जन्म लिया और इसके पश्चात् तीन बच्चे और हुए जो असमय ही काल-कवलित हो गये।

पं० जवाहरलालजी ने कानून की उच्चतम डिग्री लेकर प्रयाग हाई कोर्ट में अपने पिता के अभिभावकत्व में वकालत प्रारम्भ तो करदी, किन्तु इनका हृदय उसमें रमा नहीं। भारत भाग्य विधाता केवल नियम निर्माता बनकर कैसे रह सकता था ? देश की निर्धनता और कंगाली से श्री जवाहरलाल का द्रवणशील हृदय, संवेदना की चोट खाकर पिघल गया। जवाहर ने सच्चे जवाहर बनकर अपना जौहर दिखाने की तैयारी की।

जीवन के ऊषाकाल में ही जवाहरलाल को राजनीति से विशेष प्रेम था। उस समय वह रूस-जापान युद्ध के समाचार बड़े मनोयोग से पढ़ते थे। सन् सत्तावन के विद्रोह की, असंख्य कहानियां वे अपनी धाय से सुन चुके थे और भारत की पराधीनता उसके हृदय को खलती थी विलायत में भी वे पार्लियामेंट के निर्वाचनों को ध्यान से देखते थे। बंग-भंग के समय, जवाहरलालजी इंग्लैंड में थे, जहाँ उन्हें समाचार पत्रों के द्वारा, बंगाल की क्रान्ति के समाचार मिलते थे। लाला लाजपतराय और अजीतसिंह की गिरफ्तारी ने उस समय उनके हृदय को मथ डाला था, किन्तु वह विवश थे।

सन् १९१२ ई० में आप प्रथम बार बांकीपुर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए। उस समय देश की राजनीतिक अवस्था शोचनीय थी। 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण करना किसी भारी अपराध से कम न था। ब्रिटेन की स्वार्थ-नीति में, निरीह भारतीय जनता को पिसते देख युवक जवाहर की जवानी कसमसा उठी। प्रयाग में, ऐनीबिसेंट की, 'होमरूल' शाखा खुलते ही जवाहरलाल उसके सदस्य हो गये।

सन् १९१४ ई० में यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया, सरकार ने युद्ध-समाचारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया, मुद्रणयन्त्रों के विरुद्ध

नये नये नियम बनने लगे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने सर्व-साधारण में अपना प्रथम भाषण सरकार की इस अनाचारपूर्ण नीति के विरोध में दिया। इसी समय आपने दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम के लिये एक लाख पचास हजार रुपये की राशि संग्रह कर महात्माजी के पास अत्याचार-पीड़ितों के सहायतार्थ भेजी।

सन् १९१६ ई० में गाँधीजी के अफ्रीका से स्वदेश लौटने पर जवाहरलालजी उनके सम्पर्क में आये, प्रथम तो गांधीजी की उदासीन नीति उन्हें आकर्षित न कर सकी, किन्तु कुछ काल के अन्तर जब महात्माजी ने चम्पारन में कृषक आन्दोलन का नेतृत्व कर विजय प्राप्त की, तो पं० जवाहरलाल, निश्चित् रूप से उनके शिष्य हो गये। इसी समय आपने साम्यवादी साहित्य का भी गम्भीर अध्ययन किया और भारत की तत्कालीन राजनीतिक दासता की चिन्ता न करते हुए आपने जनता के सम्मुख साम्यवादी विचार रखे।

सन् १९१८ में, महायुद्ध की समाप्ति पर, सरकार ने भारतीय पराधीनता की बेड़ियों को दृढ़तर करने के लिये रौलट-एक्ट नामक काले कानून का विधान किया। इस बार श्री जवाहरलाल तुरन्त असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। पण्डित मोतीलालजी ने जवाहरलाल के कष्टों का स्मरण कर उन्हें असहयोग से विरत करना चाहा। महात्माजी प्रयाग में पं० मोतीलालजी से मिले और पिता की इच्छानुसार सत्याग्रह में न पड़ने का आदेश उन्हें दे गये, अनुशासन ने जवाहरलाल को विवश कर दिया।

किन्तु शीघ्र ही पंजाब हत्याकांड के समाचारों ने देश के वातावरण को पुनः विक्षुब्ध कर दिया। सरकार की स्वच्छन्द दमन-नीति ने इस बार पण्डितजी के हृदय में वह चेतना भर दी,

जिसने माता-पिता के शासन और वैभव-विलास के आसन की जड़ हिला दी। स्वयं पं० मोतीलाल नेहरू भी अपने योग्य पुत्र के आचरण से प्रभावित होकर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। अमृतसर के वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने सभापति का पद सुशोभित किया। श्री जवाहरलाल को अब अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वाधीनता मिली। इस समय तक उन पर महात्माजी के आदर्शों का जादू चल चुका था। पंजाब-हत्याकाण्ड में, वे उनकी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तापूर्ण नीति से बड़े प्रभावित हुए।

अब पण्डित जवाहरलाल ने देश-सेवा के लिये उपयुक्त कार्य क्षेत्र की खोज की। सन् १९१९ से २१ ई० तक आप संयुक्त प्रान्तीय कृषक आन्दोलन का संचालन एवं संगठन करने में दत्तचित्त रहे। इस बीच में आपने संयुक्त प्रान्तीय ग्रामों में पैदल भ्रमण कर किसानों की वास्तविक स्थिति का परिचय प्राप्त किया। फूलों की सेज पर सोने वाले जवाहर ने कंटकाकीर्ण पथ पर चलकर सरकार के हृदय में हलचल पैदा कर दी। कृषकों में नवजीवन, नवचेतना का शंखनाद फूँक कर वीरवर जवाहर ने उन्हें अत्याचार के विरुद्ध सिर ऊँचा रखने का पाठ पढ़ाया, अवध के किसान, दृढ़ संकल्प जवाहर का अडिग उत्साह देखकर बलिदान भावना से झूमने लगे। अत्याचारी झुका, अवध टिनेन्सी एक्ट के द्वारा कृषकों की मांगें पूरी हुईं। उन दिनों निरंकुश नौकरशाही ने रायबरेली के निरीह किसानों के दल पर, जो अंधाधुन्ध गोली चलाई थी, उसके दाग़ सदैव जवाहर के वीरपक्ष पर अंकित हैं और उन भोले किसानों की कराह यावज्जीवन जवाहर की छाती में गूँजती रही।

प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन की घोषणा हुई। जनता को स्वागत समारोह के लिये विवश किया जाने लगा। काँग्रेस ने

युवराज के स्वागत का विरोध किया और उनके बहिष्कार का कार्य-क्रम बनाने लगी। सरकार ने कांग्रेस को अवैधानिक घोषित कर भंग कर दिया। सत्याग्रह संग्राम छिड़ गया पिता-पुत्र दोनों ही प्रथम बार बन्दी बना कर कारागार में भेज दिये गये। पंडित नेहरू के बन्दी होते ही, स्वयंसेवकों के दल के दल आन्दोलन में भाग लेने लगे। आतंकित होकर सरकार ने जेल अवधि समाप्त होने के पूर्व ही पं० नेहरू को मुक्त कर दिया। बाहर आकर वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से महात्माजी के कार्य-क्रम को सफल बनाने में लग गये और शीघ्र ही विदेशी वस्तुओं की दुकानों पर पिकेटिंग करने के अपराध में डेढ़ वर्ष के लिये जेल भेज दिये गये। नौ महीने बाद ही, परिस्थिति नियंत्रित हो जाने के कारण आप फिर मुक्त हुए, और शीघ्र ही संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री निर्वाचित हुए। कुछ काल के पश्चात् आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री हो गये और प्रयाग के कुछ कांग्रेसी सदस्यों ने इन्हें स्वीकृति उपलब्ध किये बिना ही, प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्ड का सभापति चुन लिया। इस समय इन्हें पन्द्रह घण्टे अनवरत परिश्रम करना पड़ता था, किन्तु जवाहर थकना तो जानते ही न थे।

कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में शीघ्र मतभेद था, आप यद्यपि कौंसिल-प्रवेश में निष्ठा न रखते थे तथापि, इस मतभेद को सुलझाने में पूर्ण सजग थे। स्वाधीनता के उस संक्रामक काल में वह दलबंदी के विरोधी थे। मतैक्य के सबल समर्थक होने के नाते सन् १९२३ ई० में दिल्ली के विशेष अधिवेशन में दोनों दलों में समझौता करा दिया। इसी समय आप नाभा में अकाली-सत्याग्रह का संचालन करते हुए पकड़े गये और ढाई साल के लिए जेल भेज दिये गये। सरकार का शासन पं० जवाहरलाल

की लोकप्रियता से सदा भयभीत रहा है। अस्तु साहसहीन सरकार ने उन्हें शीघ्र ही मुक्त कर दिया।

नागपुर का झंडा-सत्याग्रह आरम्भ हुआ। प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को इस आन्दोलन में आस्था न थी। पंडित नेहरू ने महात्माजी के सच्चे भक्त की भाँति सक्रिय सहयोग देकर स्वयं सेवकों का समुद्र उमड़ा दिया, जिसमें सरकार के अत्याचार और दमन का पोत डूब गया। स्वयं-सेवकों के साहस से प्रेरित होकर आपने उन्हें उपयुक्त शिक्षा देने के लिये, कोकनाडा में हिन्दुस्तानी सेवादल की स्थापना की।

सन् १९२६ ई० में पं० नेहरू की धर्मपत्नी कमला नेहरू का स्वास्थ्य चिन्तनीय हो उठा, उन्हें चिकित्सा के लिये स्विटजरलैंड की यात्रा करनी पड़ी। इस यात्रा में उन्हें लगभग दो वर्ष लग गये। यात्रा करते हुए, उन्होंने यूरोपीय राजनीति पर गम्भीर मनन किया और सोवियत सरकार के आमन्त्रण पर आपने रूस जाकर साम्यवादी विचार-धारा से निकट सम्पर्क स्थापित किया। यात्रा की समाप्ति पर पंडित नेहरू कुशल वैद्य की भाँति राष्ट्र की धमनियों में नवरक्त का संचार करने के लिये व्यग्र हो उठे। उन्होंने देश में भ्रमण कर भाषणों की झड़ी-सी लगा दी। आपने इस समय जो लेख लिखे वे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थे।

इस प्रकार आपकी जिह्वा और लेखनी दोनों ही देश सेवा की ओर झुक पड़ी और राष्ट्र में नवीन प्राण संचार करने लगी। फलस्वरूप दिल्ली में भारतीय स्वाधीनता संघ की स्थापना हुई। जिसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना था।

सन् १९३० ई० में महात्माजी ने पूर्ण स्वाधीनता की योजना प्रस्तुत की। २६ जनवरी को समस्त राष्ट्र में स्वाधीनता का मंगल पर्व मनाया गया। देश में स्वाधीनता की सुनहरी लहरें उठने लगीं।

महात्माजी के द्वारा प्रस्तावित प्रतिज्ञा-पत्र पर आजादी के असंख्य दीवानों ने हस्ताक्षर कर दिये। चारों ओर से असहयोग की गूँज भारतीयाकाश में उठने लगी। नमक-कानून को भंग करने के लिये महात्माजी ने धरसाने की ओर प्रस्थान किया। वीर जवाहर भी अदम्य उत्साह से आगे बढ़ा और नमक-कानून भंग करने के अपराध में बन्दी बनाकर जेल भेज दिया गया। जेल से मुक्त होने पर भी वही धुन, न पिता की रुग्णावस्था की चिन्ता, न अपने स्वास्थ्य का ध्यान, न प्यारी कमला की रोगी काया के कारण शैथिल्य। जन-संग्राम में नई जान फूँकने के लिये आप टैक्स न देने के आन्दोलन में कूद पड़े। परिणामतः फिर बन्दी बनाकर कृष्ण-मन्दिर भेज दिये गये। पण्डित मोतीलाल की आसन्न मृत्यु से भयभीत होकर सरकार ने उन्हें फिर मुक्त कर दिया। ६ फरवरी सन् १९३० को पण्डित मोतीलाल नेहरू भी चल बसे। पितृवियोग के दारुण शोक से आहत जवाहर फिर भी सच्चे सैनिक की भाँति स्वाधीनता संग्राम में डटा रहा। इसी समय गांधी-इरविन समझौते का उद्योग हो रहा था, पंडित नेहरू ने इसमें पूर्ण सहयोग दिया।

सन् १९३० की गोलमेज परिषद् असफल हुई। महात्माजी इंगलैंड से रिक्त हस्त लौटे। तत्कालीन परिस्थिति पर विचार विनिमय करने के लिए पंडित नेहरू बम्बई रवाना हुए, किन्तु बीच में रोक कर गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार आपको ढाई वर्ष के कारागार की घोषणा की गई और मुक्ति लगभग अवधि समाप्त होने पर ही हुई।

सन् १९३४ में बिहार के भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिये सेवा और श्रम का अवतार जवाहर; बिहार के भग्न-भवनों में फावड़ा और कुदाली लेकर मलवा हटाने में पिल पड़ा। सरकार की भूकम्प-पीड़ितों के प्रति उदासीन वृत्ति देख कर कलकत्ते में आपने

अपने ओजपूर्ण भाषणों में सरकारी नीति का खुले आम विरोध किया। अतः बंगाल गवर्नमेण्ट के एक वारण्ट के अनुसार फिर दो साल के लिये आपको बन्दी बना लिया गया।

सन् १९३६ से मुक्त होने के बाद आप लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस समय आपने कई उपयोगी कार्य किये। आप अपने तूफानी दौरों से देश में जागृति संचार करने लगे। इसी बीच में आपने नागरिक स्वाधीनता संघ की स्थापना की जिसमें कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे मानवीय व्यक्ति भी सम्मिलित हुए। इस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम समस्या बड़ा भीषण रूप ग्रहण कर रही थी। इसको सुलझाने के लिये आपने बड़ी सहृदयतापूर्वक मुस्लिम लीग के प्रेसीडेण्ट मि० जिन्ना से पत्र-व्यवहार किया। इस सम्बन्ध में आपने कई प्रमुख मुस्लिम नेताओं से भेंट की, किन्तु मुस्लिम लीग ने अपना दुराग्रह न छोड़ा।

सन् १९३८ में आपने फिर यूरोप-यात्रा की तैयारी की। इस बार आपने मिश्र के वफ्द नेता नहसपाशा से भेंट की, और स्पेन और फ्रांस का भ्रमण किया। स्पेन में आप प्रजातंत्रीय विचारधारा के व्यक्तियों से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें उत्साहित किया। फ्रांस में पहुँच कर आपने पेरिस से एक अत्यन्त मार्मिक और ओजस्वी भाषण ब्रॉडकास्ट किया जिसकी धूम सम्पूर्ण यूरोप में मच गई। सन् १९३९ में, आप चीन के विशेष निमन्त्रण पर वायुयान मार्ग से वहाँ पहुँचे। मार्शल च्यांग-काई-शेक तथा अन्य चीनी नेताओं से मिल कर आपने चीन एवं भारत को सुदृढ़ मैत्री-बंधन में बाँध दिया। उस समय चीन, जापान की बर्बर सेनाओं से आक्रांत था। पं० नेहरू ने पीड़ित चीनियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की।

सन् १९३९ में विश्व-व्योम में द्वितीय महासमर के संहारकारी मेघ मँडराने लगे। युद्ध की विकराल विभीषिका में फ्रांस जैसे देश,

तिनके की भाँति विलीन हो गये। इस समय ब्रिटेन, जर्मनी की बम-वर्षा से जर्जर हो रहा था। ब्रिटेन बलात् भारतीयों पर भी युद्ध भार लादना चाहता था। महात्माजी ने पिछले कटु अनुभवों के आधार पर भारत को युद्धोद्योग का बहिष्कार करने का परामर्श दिया। ७ अगस्त सन् १९४२ को भारत के वयोवृद्ध सेनापति महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो' का नारा बम्बई में लगाया। असंख्य कंठों की ध्वनि भारतीय वायुमण्डल को भेद कर अनन्त आकाश में गूँज उठी। युद्ध विरोधी व्यक्तिगत आन्दोलन की घोषणा हुई। किन्तु उसी दिन सम्पूर्ण भारत में, एक साथ कांग्रेस के प्रमुख नेता बन्दी बना लिये गये। पण्डित नेहरू भी बन्दी हुए। नेताओं के मार्ग-प्रदर्शन से वंचित होकर, भारतीय जनता ने हिंसात्मक हुङ्कार किया और सरकार ने उसे कुचलने के लिए दमनदुनाली सीधी की।

अन्त में अनाचार की आग बुझी। जवाहरलाल अन्य नेताओं के साथ, जेल से मुक्त होकर बाहर आये। आजाद हिन्द के सैनिकों पर अभियोग चल रहा था, जवाहर की वकालत चमक उठी, न्यायालय में आपने अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों से आजाद हिन्द के सैनिकों की प्राण रक्षा की। सभी सैनिक निरपराध घोषित हुए।

ब्रिटिश सरकार निरन्तर अनुभव कर रही थी कि अब भारत को परतन्त्र नहीं रखा जा सकता, दमन करके वह भारत की सदिच्छाओं से हाथ धो बैठेगा। अन्त में भारतीय स्वतन्त्रता की रूपरेखा तैयार करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक मंत्रिमंडल भारतीय नेताओं से परामर्श करने के लिये भारत भेजा। इस मिशन में सर पैथिक लारेन्स, क्रिप्स और ए० एलेक्जेण्डर सम्मिलित थे। इस योजना के अनुसार अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण हुआ। पण्डित नेहरू इस अन्तर्कालीन स्थिति में भारत सरकार के उपाध्यक्ष का पद सम्भालने लगे।

अपने ओजपूर्ण भाषणों में सरकारी नीति का खुले आम विरोध किया। अतः बंगाल गवर्नमेण्ट के एक वारण्ट के अनुसार फिर दो साल के लिये आपको बन्दी बना लिया गया।

सन् १९३६ से मुक्त होने के बाद आप लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस समय आपने कई उपयोगी कार्य किये। आप अपने तूफानी दौरों से देश में जागृति संचार करने लगे। इसी बीच में आपने नागरिक स्वाधीनता संघ की स्थापना की जिसमें कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे मानवीय व्यक्ति भी सम्मिलित हुए। इस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम समस्या बड़ा भीषण रूप ग्रहण कर रही थी। इसको सुलझाने के लिये आपने बड़ी सहृदयतापूर्वक मुस्लिम लीग के प्रेसीडेण्ट मि० जिन्ना से पत्र-व्यवहार किया। इस सम्बन्ध में आपने कई प्रमुख मुस्लिम नेताओं से भेंट की, किन्तु मुस्लिम लीग ने अपना दुराग्रह न छोड़ा।

सन् १९३८ में आपने फिर यूरोप-यात्रा की तैयारी की। इस बार आपने मिश्र के वफ्द नेता नहसपाशा से भेंट की, और स्पेन और फ्रांस का भ्रमण किया। स्पेन में आप प्रजातंत्रीय विचारधारा के व्यक्तियों से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें उत्साहित किया। फ्रांस में पहुँच कर आपने पेरिस से एक अत्यन्त मार्मिक और ओजस्वी भाषण ब्रॉडकास्ट किया जिसकी धूम सम्पूर्ण यूरोप में मच गई। सन् १९३९ में, आप चीन के विशेष निमन्त्रण पर वायुयान मार्ग से वहाँ पहुँचे। मार्शल च्यांग-काई-शेक तथा अन्य चीनी नेताओं से मिल कर आपने चीन एवं भारत को सुदृढ़ मैत्री-बंधन में बाँध दिया। उस समय चीन, जापान की बर्बर सेनाओं से आक्रांत था। पं० नेहरू ने पीड़ित चीनियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की।

सन् १९३९ में विश्व-व्योम में द्वितीय महासमर के संहारकारी मेघ मँडराने लगे। युद्ध की विकराल विभीषिका में फ्रांस जैसे देश,

तिनके की भाँति विलीन हो गये। इस समय ब्रिटेन, जर्मनी की बमवर्षा से जर्जर हो रहा था। ब्रिटेन बलात् भारतीयों पर भी युद्ध भार लादना चाहता था। महात्माजी ने पिछले कटु अनुभवों के आधार पर भारत को युद्धोद्योग का बहिष्कार करने का परामर्श दिया। ७ अगस्त सन् १९४२ को भारत के वयोवृद्ध सेनापति महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो' का नारा बम्बई में लगाया। असंख्य कंठों की ध्वनि भारतीय वायुमण्डल को भेद कर अनन्त आकाश में गूँज उठी। युद्ध विरोधी व्यक्तिगत आन्दोलन की घोषणा हुई। किन्तु उसी दिन सम्पूर्ण भारत में, एक साथ कांग्रेस के प्रमुख नेता बन्दी बना लिये गये। पण्डित नेहरू भी बन्दी हुए। नेताओं के मार्ग-प्रदर्शन से वंचित होकर, भारतीय जनता ने हिंसात्मक हुङ्कार किया और सरकार ने उसे कुचलने के लिए दमनदुनाली सीधी की।

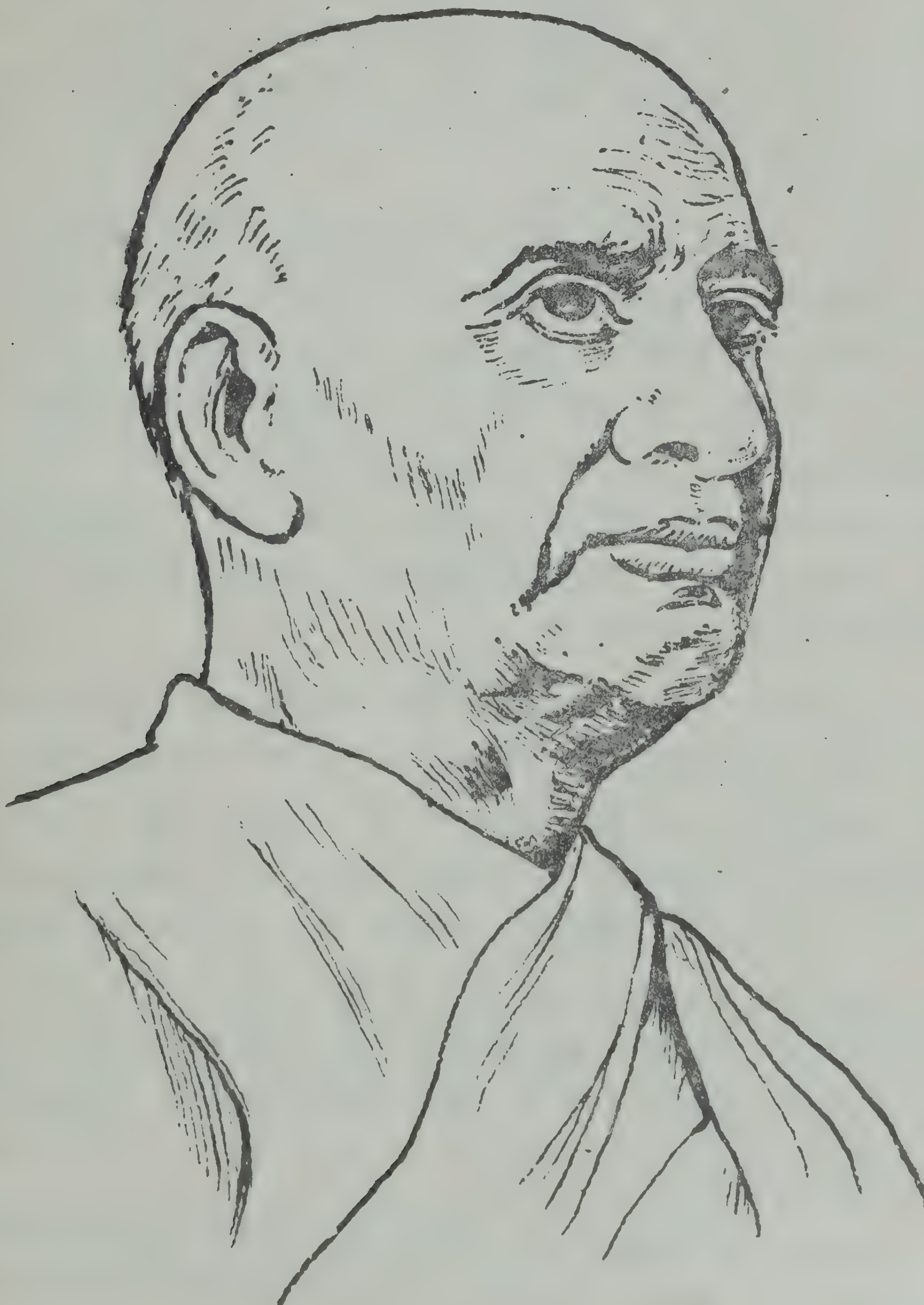
अन्त में अनाचार की आग बुझी। जवाहरलाल अन्य नेताओं के साथ, जेल से मुक्त होकर बाहर आये। आजाद हिन्द के सैनिकों पर अभियोग चल रहा था, जवाहर की वकालत चमक उठी, न्यायालय में आपने अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों से आजाद हिन्द के सैनिकों की प्राण रक्षा की। सभी सैनिक निरपराध घोषित हुए।

ब्रिटिश सरकार निरन्तर अनुभव कर रही थी कि अब भारत को परतन्त्र नहीं रखा जा सकता, दमन करके वह भारत की सदिच्छाओं से हाथ धो बैठेगा। अन्त में भारतीय स्वतन्त्रता की रूपरेखा तैयार करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक मंत्रिमंडल भारतीय नेताओं से परामर्श करने के लिये भारत भेजा। इस मिशन में सर पैथिक लारेन्स, क्रिप्स और ए० एलेक्जेण्डर सम्मिलित थे। इस योजना के अनुसार अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण हुआ। पण्डित नेहरू इस अन्तर्कालीन स्थिति में भारत सरकार के उपाध्यक्ष का पद सम्भालने लगे।

जब भारत स्वतन्त्र हो गया तो पंडित नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रधान मन्त्री बने, और आजीवन रात-दिन देश-हित के लिए अनवरत परिश्रम करते रहे। इतना बड़ा सम्मान पाकर भी वे अपने को देश का एक साधारण-सा सेवक ही समझते रहे। २७ मई का मध्यान्ह भारत के लिये ही नहीं अपितु विश्व के लिये दुर्भाग्य की घड़ी लेकर आया, पंडित नेहरू इस असार संसार से हमेशा हमेशा के लिये विदा हो गये।

: ४ :

सरदार वल्लभ भाई पटेल



सरदार वल्लभ भाई पटेल भारतीय स्वाधीनता संग्राम के एक ख्याति लब्ध नेता थे । संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ आपकी दूरदर्शिता और नीतिमत्ता का धौंसा मानते थे । परन्तु आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी दृढ़ता । आपके राजनीतिक विचार समुद्र के समान गम्भीर और ध्रुव के समान अटल थे । अपनी इसी विशेषता के कारण आप भारतीयों में लौह-पुरुष के नाम से विख्यात थे ।

सरदार वल्लभ भाई पटेल की जन्मभूमि गुजरात प्रान्त में स्थित पेटलाद ताल्लुका में करमसद ग्राम थी । आपका जन्म २१ अक्टूबर सन् १८७५ को हुआ था । इस प्रान्त में लवा और कदवा नाम की एक ही जाति की दो शाखायें मुख्यतः निवास करती हैं । सरदार पटेल लवा जाति के पुत्ररत्न थे । इनके पिता श्री झबेरभाई पटेल की दो यशस्वी सन्तानें हुईं । विट्ठलभाई और वल्लभ भाई । विट्ठलभाई भी अपने कनिष्ट के समान ही विश्व-विख्यात देश-भक्त नेता थे ।

श्री वल्लभ भाई ने देश-भक्ति और निर्भयता का गुण अपने पिता और भाई से ही प्राप्त किया था । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इनके पिता द्वारा ही हुई । अल्पकाल के पश्चात् इनके पिता ने इन्हें पेटलाद की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया । पाठशाला का अध्ययन समाप्त कर, वल्लभ भाई नडियाद के हाई स्कूल में भरती हुए । हाई स्कूल में अध्ययन करते हुए कई अवसरों पर आपने अपनी तेजस्विता और निर्भीकता का परिचय दिया । एक अवसर पर तो आपने स्कूल में हड़ताल करा कर अपने अध्यापक तक को शिष्ट और सभ्य व्यवहार करने को बाध्य किया ।

कुछ दिन के पश्चात् आप नडियाद से बड़ोदा चले आये और दसवीं श्रेणी में संस्कृत के स्थान पर गुजराती वैकल्पिक विषय ले

लिया। गुजराती के अध्यापक महोदय संस्कृत के भक्त थे। अतः वे इस प्रकार पटेल को विषय परिवर्तन करते देख क्षुब्ध हो उठे। परिणाम यह हुआ कि वे वल्लभ भाई को तंग करने की नई-नई योजनाएँ बनाने लगे। वल्लभ भाई ने बड़े साहस और धैर्य के साथ आपत्तियों को सहन किया किन्तु अध्यापक के सामने उन्होंने घुटने न टेके। अंततोगत्वा वे बड़ोदा स्कूल से निकाल दिये गये और इन्हें नडियाद स्कूल में फिर से भरती होना पड़ा। यहीं से इन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की। इस प्रकार यह तो सुनिश्चित है कि वल्लभ भाई किशोरावस्था में बड़े शरारती थे। वल्लभ भाई ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कालेज में भी भरती होने का उद्योग किया किन्तु ये अपने पिता की आर्थिक अवस्था से भी परिचित थे। अस्तु यह स्वीकार करना होगा कि धनाभाव के कारण ही आप उच्च शिक्षा से वञ्चित रहे। कॉलेज छोड़कर, आपने मुख्तारी की परीक्षा पास की और गोदरा में वकालत करने लगे। कुछ काल के अनन्तर आप वोरसद चले आये और वहाँ स्थायी रूप से वकालत करने लगे। थोड़े ही समय में आप अपनी परिश्रम-शीलता और तीव्र बुद्धि के कारण न्यायालय में सम्मानास्पद दृष्टि से देखे जाने लगे। अभियोगों में कार्यवाही करते हुए, वे नियमो-उपनियमों की बड़ी विशद व्याख्या करते थे और अपने पक्ष में अकाट्य प्रमाण जुटा देते थे। उनके इन्हीं गुणों के कारण पुलिस एवं न्यायाधीश तक उनसे आतंकित रहते थे।

जिस समय वल्लभ भाई गोदरा में थे, वहाँ प्लेग का भीषण प्रकोप हुआ और भारी जन-संहार होने लगा। इसी समय जब वे प्लेग-पीड़ितों की सेवा-सुश्रुषा में लगे हुए थे, वे भी दुर्भाग्यवश इस भयानक रोग से आक्रान्त हुए। इस परिस्थिति से घबराकर ये स्वयं नडियाद चल दिये और अपनी पत्नी को सुरक्षा की दृष्टि

से करमसद भेज दिया । करमसद में इनकी धर्मपत्नी को भी प्लेग हो गया, वे तुरन्त उन्हें लेकर बम्बई पहुँचे किन्तु कोई लाभ न हुआ । न्यायालय में एक अभियोग के सम्बन्ध में जब वे वादी के पक्ष में तर्क दे रहे थे उसी समय तार द्वारा उन्हें अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार मिला । वे सच्चे कर्त्तव्य-निष्ठ की भाँति अपने पक्ष की पुष्टि करते रहे और कार्य समाप्त करके ही लौटे । उनके मित्र उनकी सहनशीलता और धैर्य को देखकर आश्चर्य चकित हो गये ।

इस प्रकार बड़ी तत्परता और लगन के साथ उन्होंने वकालत प्रारम्भ की और अल्पकाल में ही यथेष्ट धन संचय कर लिया, अब वे विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का विचार करने लगे । उन्होंने आवेदन पत्र भेजकर सरकार से पासपोर्ट भी प्राप्त कर लिया किन्तु उनके अंग्रेज ने उसे अपने लिये ले लिया । फलतः जब विट्ठल भाई पटेल विलायत में तीन वर्ष रह कर बैरिस्टरी पास कर आये तब जाकर कहीं इन्हें अवसर मिला । बैरिस्टरी के अध्ययन काल में इन्होंने घोर परिश्रम किया । वे नित्य प्रातः काल उठकर कड़ाके जाड़े में अपने घर से ग्यारह मील पर स्थित 'इनर टेम्पल' नामक पुस्तकालय में जाते थे और भूख-प्यास भूलकर सत्रह-सत्रह घण्टे परिश्रम करते थे । अस्तु जब परीक्षाफल निकला तो सरदार पटेल का नाम प्रथम श्रेणी में था । इंगलैण्ड से लौटकर श्री वल्लभ भाई अहमदाबाद में बैरिस्ट्री करने लगे । थोड़े ही दिनों में वल्लभ भाई अपने व्यवसाय में चमक उठे । उनकी आय उत्तरोत्तर बढ़ती गई और वे अहमदाबाद के धनी मानी पुरुषों में हो गये ।

भाग्यचक्र अविराम गति से चलता है । अभी तक वल्लभ भाई के जीवन में मानवीय उच्च आदर्शों का विकास न हुआ था ।

इसी समय मानो सरदार पटेल की सुप्त आत्मा को जगाने के लिये दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गाँधी अहमदाबाद आये। सारे नगर में इस दुबले-पतले मनुष्य के सादा जीवन और उच्च विचारों की चर्चा होने लगी। महात्माजी से वल्लभ भाई की प्रथम भेंट एक क्लब में हुई। सरदार पटेल उनके विचारों के हामी न थे। अस्तु दोनों में कभी कभी मीठे व्यंग चलते थे। सरदार पटेल का विश्वास तो यह था कि इस विचित्र सत्याग्रही का प्रभाव उनके चित्त पर न पड़ेगा। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से महात्माजी का जादू उन पर चल रहा था। धीरे धीरे गांधीजी के सिद्धांतों पर उन्हें आस्था हो गई और उनकी आत्मा स्वीकार करने लगी कि भारत के असंख्य निर्धन और बुभुक्षित जनता के उद्धार का मार्ग महात्माजी के बतलाये हुए सिद्धांतों पर चलने से ही होगा।

धीरे धीरे वल्लभ भाई का झुकाव राजनीति की ओर होने लगा और वह प्रथम बार गोदरा प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेंस के सभापति निर्वाचित हुये। इस कांफ्रेंस में गुजरात प्रांत में बेगार बन्द कराने का प्रस्ताव पास हुआ। गांधीजी तो प्रस्ताव पास करा कर चम्पारन के किसानों का कष्ट मोचन करने को चले गये और बेगार-विरोधी आंदोलन का भार वल्लभ भाई को सौंप गये। बल्लभ भाई ने कमिश्नर को सात दिन का नोटिस देकर बेगार बंद करने को लिखा। जब कमिश्नर ने ध्यान न दिया तो वल्लभ भाई ने सत्याग्रह करने की धमकी दी। अंत में कमिश्नर ने सरदार पटेल को बुलाया और मनोनुकूल सारी बातें तय कर दीं। वल्लभ भाई का यह प्रथम सार्वजनिक कार्य था।

सन् १९२०-२१ का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। महात्माजी ने सरकारी उच्च पदाधिकारियों, वकीलों तथा विद्यार्थियों और अध्यापकों से अपील की कि वे अपने अपने कार्यों को छोड़कर

भारत सरकार से असहयोग करें। सरदार पटेल पर इस अपील का विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसी समय वकालत छोड़ दी और अंग्रेजी स्कूल से अपने पुत्र को भी हटा लिया। आन्दोलन बड़े वेग से चला और गाँधीजी गिरफ्तार हो गये। गाँधीजी के कृष्ण मंदिर में जाते ही आंदोलन का सारा भार सरदार पटेल के ऊपर आ पड़ा। सरकार की भेद नीति के कारण देश में साम्प्रदायिक दंगों का सूत्रपात हुआ जिससे आंदोलन शिथिल-सा होने लगा। किन्तु गुजरात प्रांत में वल्लभ भाई के उत्साह और सच्ची लगन के सामने सरकार की एक न चली और वहाँ सरकार की भेद-नीति को व्यर्थ करता हुआ असहयोग पूर्ण संगठन के साथ चलता रहा।

सन् १६२२ में बोरसद प्रान्त में दिन दहाड़े डाके पड़ने लगे किन्तु अधिकारियों की उपेक्षा के कारण निरीह जनता के कष्ट न मिटे। सरकार ने दस्युओं का विनाश करने के लिये पुलिस की जो व्यवस्था की उसका व्यय तो ग्राम निवासियों को देना पड़ता था और पुलिस भी डाकुओं से मिलकर इनको लूटती थी। वल्लभ भाई से यह न देखा गया। उन्होंने पुलिस का व्यय ग्रामवासियों पर लादने के विरोध में आन्दोलन किया और स्वयंसेवकों का एक दल संगठित करके डाकुओं का उन्मूलन करने को प्रस्तुत हुए। इनके तीव्र आन्दोलन से सरकार ने अतिरिक्त कर उठा लिया और स्वयं सेवकों के सतर्क निरीक्षण में भयभीत होकर डाकू लापता हो गये। इस कार्य में वल्लभ भाई ने जो सफलता प्राप्त की वह उनकी इस कार्य-कुशलता का ज्वलंत प्रमाण है।

इसके पश्चात् नागपुर का झंडा सत्याग्रह हुआ जिसमें वल्लभ भाई के दृढ़ संगठन और अपूर्व कार्य-कुशलता ने गवर्नर को झुकने के लिये विवश कर दिया। सरकार वल्लभ भाई के प्रभाव को स्वीकार करने लगी। जब डाकुओं ने उत्पीड़क बनकर गुजरात

प्रांत में भी लूटमार शुरू कर दी तो सरदार पटेल ने प्रांतप्रमुख के पास विरोध पत्र भेजा। प्रांतप्रमुख ने उनकी बात मान ली और अतिरिक्त कर उठा लिया।

सत्याग्रह से अवकाश मिलने पर वल्लभभाई पटेल ने अहमदाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के निर्वाचनों में भी भाग लिया। फलतः वह उक्त म्युनिसिपल बोर्ड में सभापति मनोनीत हुए और पाँच वर्ष तक आपने नगर की सफाई आदि की सुव्यवस्था की। इन्हीं दिनों गुजरात प्रांत में भीषण जल-प्रलय हुआ जिसमें आपने दो सहस्र स्वयंसेवकों के साथ घटना स्थल पर पहुँच कर जनता की अमूल्य सेवा की।

सुप्रसिद्ध बारडोली सत्याग्रह के अधिनायक के रूप में वल्लभ भाई ने विलक्षण कार्य-कुशलता का परिचय दिया। बात यह थी कि सरकार ने बारडोली के कृषकों का लगान बढ़ाकर सवाया कर दिया था। कृषकों ने इसके विरोध में गवर्नर और कौंसिल में आवेदन पत्र भेजे किन्तु उन्हें सफलता न मिली। अंत में ४ फरवरी सन् १९२८ को किसानों की एक महती सभा में बल्लभ भाई ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया और कृषकों को भविष्य में आने वाले कष्टों से अवगत किया। जब किसानों ने मरते दम तक सत्याग्रह जारी रखने की प्रतिज्ञा कर दी तो वल्लभ भाई उनका संचालन करने लगे। बेदर्द नौकरशाही ने भी किसानों को कुचल डालने में कोई कमी न रखी। स्त्री, पुरुष बच्चे बंदी बनाकर जेल भेज दिये गये, ताले तोड़-तोड़ कर सिपाहियों ने उनका सामान लूट लिया और पठानों ने उनकी बहू-बेटियों पर पाशविक अत्याचार किये। किन्तु कृषक वज्र हृदय बनकर अपनी आन पर अड़े रहे। अंत में बारडोली संग्राम देशव्यापी प्रश्न हो गया। प्रांतीय कार्यकारिणी सभा के सोलह सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया।

देश के सभी महान् नेता बारडोली में पहुँच गये ! बड़ा भीषण विरोध हुआ, अत्याचार की तलवार की धार लौट गई। बारडोली के कृषक अमर हो गये और अपने अदम्य उत्साह और सफल नेतृत्व के कारण उसी दिन से वल्लभ भाई सरदार पटेल के नाम से विख्यात हुए ।

सन् १९२९ में लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति की घोषणा की। महात्माजी ने ग्यारह शर्तें तत्कालीन वायसराय के पास लिखकर भेज दीं। सत्याग्रह के लिए संगठन प्रारम्भ हुआ, सरदार पटेल, ७ मार्च को भाषण देने के लिये रास गाँव पहुँचे। सरकार ने सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया, पर सरदार पटेल प्रतिबन्ध की क्या चिन्ता करते ! भाषण देते हुए सरकार ने उन्हें बन्दी कर लिया और तीन महीने की कड़ी कैद और पाँच सौ रुपया जुर्माना कर दिया। सरदार पटेल ने यह अर्थ दण्ड अस्वीकार कर दिया और तीन मास का अतिरिक्त कारावास लेकर जेलयात्रा की। साबरमती जेल में रखकर सरकार ने उन्हें बड़े कष्ट दिये, उन्हें केवल पाँच पैसे की लागत का भोजन दिया जाता था। अस्तु कारावास की अवधि समाप्त होने पर जब वह जेल से मुक्त हुए तो उनके शरीर का भार पन्द्रह पौंड कम हो गया था। सरदार पटेल बाहर आये तो देखा कि सारा देश नमक कानून भंग कर रहा था। देश के प्रमुख नेता एवं राष्ट्रपति पण्डित मोतीलाल नेहरू गिरफ्तार किये जा चुके थे, परिस्थिति बड़ी विषम थी। सरदार पटेल राष्ट्रपति बनकर सत्याग्रह संचालन करने लगे। देश में अत्याचार विरोधी नई लहर दौड़ गई।

बम्बई में तिलक-श्राद्ध तिथि मनाई गई। सरदार पटेल बम्बई पहुँचकर जुलूस का संचालन करने लगे, सरकार ने आतंकित होकर उत्सव को अनियमित घोषित कर दिया। हॉर्नबी रोड पर

पुलिस ने जुलूस को घेर लिया और लाठी चार्ज करके उसे तितर-बितर कर दिया। सरदार पटेल और महामना मालवीयजी आदि नेता गिरफ्तार कर लिये गये, किन्तु शीघ्र ही गांधी इरविन समझौता होने पर रिहा कर दिये गये। अब पटेल अपनी सम्पूर्ण शक्ति से रचनात्मक कार्यों में लग गये।

सन् १९३० में गोलमेज परिषद् की असफल समाप्ति पर गांधी-इर्विन समझौता भंग हुआ और देश पुनः असहयोग आन्दोलन के लिये संगठित होने लगा। सन् १९३१ ई० में कराँची काँग्रेस के अधिवेशन में वल्लभ भाई राष्ट्रपति मनोनीत हुए। उन्होंने बम्बई में महात्माजी की उपस्थिति में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति बुलाई। सत्याग्रह योजना परिपक्व हुई। सरकार ने तुरन्त पटेल को बन्दी बनाकर दो वर्ष के लिये कृष्ण मन्दिर भेज दिया।

सरदार पटेल का जेल में स्वास्थ्य गिर गया। इसी बीच पंडित मोतीलाल नेहरू का देहावसान हो गया। देश में बड़े उथल-पुथल हुए किन्तु सरदार मुक्त हुए पूरे दो वर्ष बाद सन् १९३४ ई० में। उस समय परिस्थिति भिन्न थी। कांग्रेस सरकारी असेम्बली के निर्वाचनों में भाग लेने का निश्चय कर चुकी थी। और सरकार कांग्रेस का समूल विनाश करना चाहती थी। अस्तु इस बार कांग्रेस को सरकार के समर्थक धनी मानी दल से टक्कर लेना था। सरदार पटेल ने बड़ी दृढ़ता और अनुशासन के साथ कांग्रेस के पक्ष में देशव्यापी प्रचार किया, निर्वाचनों में कांग्रेस को अभूतपूर्व विजय हुई और सात प्रान्तों में काँग्रेस का बहुमत हो गया। प्रान्तीय सरकारों का सुचारु रूप से संचालन करने के लिये एक पार्लियामेंट्री उपसमिति का निर्माण हुआ। सरदार पटेल ही इस उपसमिति के अध्यक्ष बने।

कांग्रेस मन्त्रि-मंडल जनतन्त्रात्मक आधार पर कार्य करता था

और गवर्नर स्वाधिकार (Veto) प्रयोग करके अनुचित हस्तक्षेप करता था। इस प्रकार निरन्तर संघर्ष उग्रतर हो रहा था। इस संघर्ष को समाप्त करने के लिये ही मानो सन् १६३६ में द्वितीय महायुद्ध का श्री गणेश हुआ। कांग्रेस, पिछले महासमर की कटु स्मृतियों के परिणाम स्वरूप अब धन-जन की सहायता न देना चाहती थी और गवर्नर इस बात को सहन न कर सकते थे अस्तु कांग्रेस मन्त्रि-मंडल त्यागपत्र देकर बाहर आ लोक-सेवा करने लगा।

लगातार तीन वर्ष तक युद्ध की प्रगति का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर, सन् १६४२ में बम्बई के एक विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने अंग्रेजों के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' (Quit India) का नारा लगाया। सरदार पटेल के आग्नेय भाषणों ने इस क्रांन्ति की भूमिका तैयार की। समस्त भारत में एक साथ कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सरकार की अविवेकपूर्ण नीति से देश में सर्वत्र क्रांति मच गई। लगभग तीन वर्ष बाद युद्ध की समाप्ति पर सरकारी नीति पलटी और १५ जुलाई सन् १६४५ ई० को अन्य नेताओं के साथ सरदार पटेल भी मुक्त हो गये।

इसके पश्चात् भारतीय स्वाधीनता के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने के लिये ब्रिटेन से कई राजनीतिक प्रतिनिधियों का आगमन हुआ। अन्त में विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त सन् १६४७ ई० को भारतीय स्वाधीनता की घोषणा कर दी। भारतीयों को स्वतन्त्रता मिली किन्तु भारत अखंड न रहा। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का विभाजन हो जाने से भीषण साम्प्रदायिक क्राँति का जन्म हुआ। देश में सर्वत्र हिन्दू-मुस्लिम दंगे उभरने लगे जिसमें सहस्रों निरपराध हिन्दू मुसलमान हताहत हुए। सरदार पटेल के प्रभाव और प्रचार से गुजरात प्रान्त में यह दंगे अपेक्षाकृत शान्त रहे।

भारत छोड़ते समय अंग्रेजों ने देशी नरेशों को भी स्वाधीन कर दिया था। इस प्रकार भारतीय अखंडता को भारी बाधा पहुँची। अविभाज्य भारत का यह अंग-भंग अस्वाभाविक था और इससे देश की आन्तरिक शान्ति में बाधा पड़ती थी। सरदार पटेल इस समय स्वाधीन भारत के गृहमन्त्री का उत्तरदायित्व पूर्ण पद संभालते हुए देशी नरेशों की स्थिति अनिष्टकारी समझते थे अस्तु उन्होंनें उन रियासतों के एकीकरण का निश्चय किया। पहले उन्होंने छोटे छोटे राज्यों को संघ में लानें का प्रयत्न किया। धीरे धीरे भारत की सम्पूर्ण छोटी-बड़ी रियासतों ने संघ बद्ध होकर केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत रहना स्वीकार कर लिया। सरदार पटेल की यह राजनीतिज्ञता भारतीय इतिहास में अमर रहेगी। पाँच सौ से अधिक भारतीय रियासतों का, बड़े ही शान्ति पूर्ण और अहिंसक ढंग से ऐतिहासिक सूत्र में संगठित करना एक चमत्कार ही है जो सरदार पटेल ने शासकों और शासितों की पूर्ण सहमति से कर दिखाया। इस प्रकार आज सभी रियासतें भारतीय संघ में सम्मिलित हो चुकी हैं।

दक्षिण भारत की हैदराबाद रियासत ने अवश्य इस प्रकार विलय होना अस्वीकार कर दिया था। निजाम स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखता था। निजाम के आततायी रजाकर भारतीय सीमा में प्रवेश कर देश की शान्ति को भंग करते थे। हैदराबाद में हिन्दू जनता बड़े कष्ट में थी। अन्त में सरदार पटेल ने सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय किया। भारतीय सेनाएँ एक निश्चित योजना के अनुसार हैदराबाद में विद्युत वेग से बढ़ीं। अल्पकालीन विरोध के अनन्तर निजाम ने आत्म-समर्पण कर दिया। हैदराबाद में भारतीय सेनाओं का शानदार स्वागत हुआ। इस प्रकार सरदार पटेल ने अपनी दूर-

दर्शिता और कूटनीतिज्ञता से हैदराबाद को भारतीय संघ में मिला लिया ।

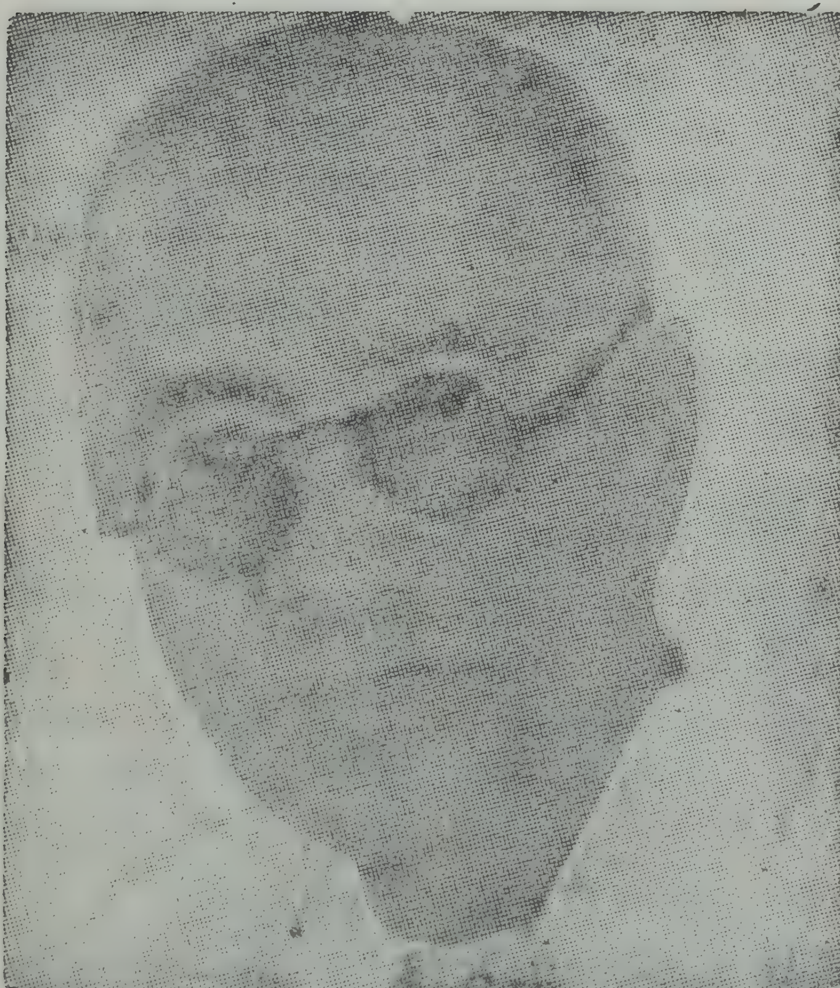
सरदार पटेल ने गृहमन्त्री के रूप में अपूर्व दृढ़ता और कार्य-कुशलता का परिचय देते हुए भारतीय समस्याओं को हल किया। आप जैसे कुशल मन्त्री आज हमारे बीच में नहीं हैं परन्तु आपका व्यक्तित्व अमर रहकर भारत का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। आपका स्वर्गवास १५ दिसम्बर सन् १९५० को ९ बजकर ३७ मिनिट पर बम्बई में हुआ ।

—— ——

: ५ :

राजगोपालाचार्य

श्री राजगोपालाचार्य का जन्म सन् १८७९ ई० में होसूर ग्राम में हुआ था। होसूर ग्राम दक्षिण भारत के सलेम नामक जिले में



है। आपके पिता वैष्णव धर्म के कट्टर अनुयायी थे। अतः धार्मिक नियमों का वे कट्टरता के साथ पालन करते थे। इतना होने पर

भी उनका विश्वास था कि उच्च शिक्षा के बिना मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता है। वे स्वयं भी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे और भारत के प्राचीन धर्म ग्रंथों का उन्होंने बहुत ही गहन अध्ययन किया था। इसलिये जैसे ही श्री राजगोपालाचार्य की आयु अध्ययन प्रारम्भ करने योग्य हुई, उन्होंने मैसूर राज्य के एक स्कूल में उन्हें पढ़ाने बिठा दिया।

पिता की प्रकांड विद्वत्ता का प्रभाव बालक राजगोपालाचार्य पर पड़ ही गया था। पिता के द्वारा संस्कृत के श्लोकों के मार्मिक अर्थ उनके हृदय में समा चुके थे, इसलिये पढ़ने-लिखने में आप बहुत ही शीघ्र उन्नति करने लगे। आपकी तीव्र बुद्धि के सामने अन्य साथियों की सदा हार होती रहती थी। अध्यापकों की दृष्टि में आप उत्तरोत्तर सम्मान पाते हुए उन्नति करते गये और बहुत शीघ्र ही स्कूलों की पढ़ाई समाप्त करके मद्रास के लॉ कालेज में कानून की शिक्षा पाने के लिए भर्ती हो गये।

कानूनी परीक्षा सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण करके आपने सलेम जिले में ही वकालत करना आरम्भ कर दिया। सलेम में यद्यपि पहले से ही बड़े बड़े वकील जमे हुए थे, जिनकी वकालत के सामने किसी नवीन वकील का जमना बड़ा कठिन था, पर राजाजी ने अपनी अनुपम योग्यता के कारण बहुत शीघ्र उन्नति करली। आपकी वकालत चमक उठी। नये नये मुवक्किल आपकी ओर आने लगे। राजाजी में नम्रता विशेष रूप से है अतः नए-पुराने मुवक्किलों को उन तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। उस समय राजाजी अपना सम्पूर्ण समय वकालत में ही लगाते थे। अपने विद्यार्थी जीवन तथा वकालत के इन प्रारम्भिक दिनों में राजाजी ने अन्य किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अपने व्यवसाय की उन्नति को ही चरम लक्ष्य बनाया। पर सलेम एक छोटा-सा जिला है। अतः वहाँ राजाजी की अपनी योग्यता का

पूर्ण विकास करना असम्भव जान पड़ा। अस्तु सलेम को छोड़ कर, कहीं अन्यत्र जाकर वकालात करने का निश्चय करके आप मद्रास आ गये। मद्रास में एक-तो हाई कोर्ट था दूसरी ओर आम वकीलों की आय थी जिसमें उन्हें वहाँ वकालत जमाने की प्रेरणा मिली।

मद्रास में ही आपने घरबार को बसा कर आपने वकालत करना आरम्भ कर दिया। यहां भी विलायत से पास हुए बैरिस्टरों की कमी नहीं थी जिनके सामने अपना पैर जमाना राजाजी को जरा कठिन प्रतीत होने लगा, पर उन्होंने दृढ़ निश्चय करके और अपनी योग्यता पर विश्वास करके हाईकोर्ट में वकालत आरंभ की। शीघ्र यहाँ भी राजाजी ने अपनी बुद्धि की धाक जमा दी। आपकी वकालत चल निकली और मद्रास के योग्यतम वकीलों में आपकी गणना होने लगी। उस समय राजाजी की आमदनी भी हजारों रुपये मासिक थी। वे बड़े ठाट-बाट से रहा करते थे। परन्तु इतनी आमदनी और योग्यता पर उन्हें लेश मात्र भी गर्व न था। वे सबके साथ सरल, नम्र, और सच्चा व्यवहार करते थे। नये या पूराने किसी भी मुवक्किल से उन्होंने कभी कड़वी बात नहीं कही। अपने समान ही दूसरों को सुख पहुँचाना उनका ध्येय था। अतः वे इस बढ़ती हुई आमदनी में से दीन-दुःखी मनुष्यों की सहायता किया करते थे, निर्धन विद्यार्थियों को सहायता देते थे और अन्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का भी प्रयत्न किया करते थे।

यद्यपि अभी तक राजाजी अपनी वक़ालत की ओर ही सम्पूर्ण ध्यान लगाये हुए थे, पर देश की दुर्दशा को देखकर आपका मन भी उस ओर खिच चला। अंग्रेजी सरकार के अत्याचार को देखकर आप देश की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस में सम्मिलित हो

गए । यहां भी अपनी विद्वता के कारण राजाजी को उन्नति करते देर नहीं लगी । सन् १९२१ में आप कांग्रेस कमेटी के महामंत्री बनाये गये ।

कुछ ही दिनों बाद महात्मा गांधीजी का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया । देश भर में विलायती माल का बहिष्कार सरकारी नौकरियों और पदवियों का त्याग होने लगा । राजाजी ने भी इस आंदोलन में भाग लिया । कांग्रेस के वकालत छोड़ने वाले प्रस्ताव के पास होते ही, औरों के साथ-साथ आपने भी सहस्रों रुपये की आय वाली वकालत को छोड़ दिया । इस प्रकार सन् १९२१ में देश की आजादी का बिगुल बजते ही आप सम्पूर्ण शक्तियों के साथ असहयोग आंदोलन के मैदान में दृढ़ होकर कूद पड़े । राजाजी जैसे योग्य और धनी वकील का वकालत छोड़ते देखकर मद्रास प्रांत के कितने ही नये-पुराने, छोटे-बड़े वकीलों ने भी अपनी-अपनी वकालतों पर लात मार दी। उस समय आप बिल्कुल संन्यासी के वेश में रहते थे । सर्वदा देश प्रेम के भाव आपके मस्तिष्क में गूंजते थे और उनका अधिक से अधिक समय देश-कार्य में ही बीतता था ।

राजाजी कभी भी किसी कार्य में तब तक पैर नहीं रखते थे जब तक कि वे पूर्ण उसकी जाँच-पड़ताल नहीं करलें । अपने को सन्तुष्ट और दृढ़ करके ही वे कार्यों में पड़ते थे । अतः जब कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन को आरम्भ किया तो राजाजी पूर्णरूप से उसमें कूद पड़े और जब कांग्रेस कमेटी के कुछ सदस्यों ने विलायती माल के बहिष्कार को रोक कर जनता को जाँचना चाहा तो राजाजी ने इसका विरोध किया । वे नहीं चाहते थे कि इस बहिष्कार को रोककर पहले यह देखा जाय कि यह बहिष्कार भी चल सकेगा या नहीं ।

राजाजी जिस भांति प्रथम कोटि के वकील थे उसी प्रकार वे उच्च वक्ता और लेखक भी हैं। सन् १९२२ में जब गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये थे, तो राजाजी ने ही गांधीजी के पत्र "यंग इण्डिया" का सम्पादन करके अपनी लेखन कला का चमत्कार दिखाया था। इसी प्रकार आप गांधीजी के निकट पहुँच गये। कर्म करने की गाढ़ी लगन, विचारों की दृढ़ता और स्वतन्त्र बुद्धि के कारण ही आपको गया कांग्रेस के अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश बहिष्कार में विजय प्राप्त हुई। यद्यपि उस अधिवेशन में पं० मोतीलाल नेहरू देशबन्धु चित्तरंजनदास आदि कौंसिल निर्वाचन में भाग लेने के पक्ष में ही थे और जनता का विश्वास भी था कि उन्हीं के पक्ष की जीत होगी, पर राजाजी ने अपनी बुद्धि और अतुल तर्कशक्ति के कारण उनके प्रस्तावों को निष्फल कर दिया।

सन् १९२८ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में जब औपनिवेशक स्वराज्य के साथ-साथ देश की निम्नावस्था को दूर करने के लिये मादक द्रव्यों के विरुद्ध प्रचार करने का प्रश्न उठा, तो राजाजी ने उसमें पूर्ण भाग लिया। फिर तो रात-दिन राजाजी एक इसी कार्य में जुट पड़े। हर समय मादक द्रव्यों के प्रतिरोध की चेष्टा में व्यस्त रहते थे। इस कार्य में भी आपको इतनी अधिक सफलता मिली कि सर्वत्र आपके गुणों और कार्य-शैली की प्रशंसा होने लगी। विदेशों में मादक द्रव्य के विरुद्ध प्रचार करने वाले भी आपके अनोखे ढंग को देख कर दंग रह गये।

इसके बाद सन् १९३० में कांग्रेस ने जब सत्याग्रह संग्राम आरम्भ किया तो राजाजी ने भी उसमें पूर्ण भाग लिया। मद्रास प्रान्त में सत्याग्रह की पताका फहराने के लिए आप इधर-उधर घूमने लगे। पर अंग्रेजों ने अछूतों को भड़का कर जांति-पांति का प्रश्न खड़ा कर दिया और वे कांग्रेस के अधिवेशन को निष्फल

बनाने लगे। राजाजी ने भी जाति-पाँति के विरुद्ध आवाज उठाकर कहा कि "मैं ब्राह्मण और कट्टर वैष्णव परिवार का होते हुए भी जाति-पाँति को नहीं मानता हूँ।" मद्रास जैसे कट्टर धार्मिक और छूत-छात वाले प्रान्त में राजाजी के इन शब्दों से खलबली मच गई। ब्राह्मण-अब्राह्मण दोनों की ओर से राजाजी पर जाति-भ्रष्टता तथा फुसलाने के आरोप क्रमशः लगाये गये। राजाजी के विरुद्ध घोर प्रचार किया गया, पर राजाजी ने अपने कार्य में ज़रा भी शिथिलता नहीं आने दी और सत्याग्रह पर डटे रहे। जब राजाजी कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष चुने गये तो आप अपना पूरा समय अछूतोद्धार में ही लगाने लगे तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने के पश्चात् अध्यक्ष पद डा० राजेन्द्र को सौंप कर मन्दिर-प्रवेश बिल के पास करने में जुट गये। असेम्बली में इस बिल के उपस्थित होते ही आपने कितने ही सदस्यों से चर्चा करके बिल की महत्ता समझाई और स्वयं भी मद्रास प्रान्त में मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन के पक्ष के तथा छूत-छात के विरुद्ध प्रचार करने लगे। मद्रास जैसे कट्टर धार्मिक प्रान्त में भी राजाजी के प्रभाव के कारण यह प्रचार खूब चला, अनेकों मन्दिरों ने अछूतों के लिये द्वार खोल दिये। छूत-छात की ओर से भी मनुष्यों की कट्टरता ढीली पड़ने लगी। राजाजी को इस कार्य में भी आशातीत सफलता मिली।

इस समय भारत के गवर्नर लार्ड विलिंगडन थे, जो गाँधीजी और काग्रेस के विरुद्ध प्रचार किया करते थे। वे कहते थे, "भारत में कांग्रेस को कुचल दिया गया है।" भारत में गांधीजी या कांग्रेस का कुछ भी प्रभाव नहीं है। कांग्रेस को यह बात खटकी तथा शीघ्र ही उसने अपना अतुल जनबल दिखलाने के लिये असेम्बली के चुनाव में भाग लेने का निश्चय कर लिया। राजाजी

ने भी घोर परिश्रम किया । रात-दिन एक करके और सरकार की शक्ति की तनिक भी चिन्ता न करके अपने मद्रास की लगभग तमाम सीटों पर कांग्रेस की विजय-पताका फहरा दी। असेम्बली के इन चुनावों में कांग्रेस की जीत हो गई।

परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद राजाजी का मन इन उतार-चढ़ावों से ऊब गया। राजनीतिक कार्यों से थक कर वे एकांतवास करने की ओर झुक गये, आपने कांग्रेस से एकदम हाथ खींच लिया, तथा तत्कालीन देश के सभी नेताओं और स्वयं गांधीजी के कहने पर भी उस समय आप देश के राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन से पृथक ही हो गये। इस एकांतवास में वे केवल धार्मिक और साहित्यिक कार्य में ही लग गये। यद्यपि एक दृष्टि से राजाजी का यह एकांतवास देश की राजनीतिक प्रगति को अहितकर था, पर साथ ही इस काल में राजाजी ने जो साहित्यिक कार्य किया वह भी कम महत्व का नहीं है। आपको संस्कृत साहित्य और प्राचीन धार्मिक ग्रंन्थ का प्रेम तो पिता से ही प्राप्त हो चुका था। अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान ग्रापने अध्ययन-काल में कर लिया था। अत: आपने इस एकान्तवास में हिन्दू-धर्म के महान् ग्रंन्थ-उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया, श्री भगवद्गीता पर भी बड़ी सुन्दर टीका की और तामिल की मासिक पत्रिका "विमोचनम्" का सफल सम्पादन करने के साथ-साथ तामिल भाषा में सुन्दर कहानियाँ लिखना भी आरम्भ कर दिया। गांधीजी का आप पर पूर्ण प्रभाव था। अत: ग्राप छोटी-छोटी कहानियों में गाँधीजी के विचारों को बड़ी सफलता के साथ समझाने लगे।

कुछ समय तक एकांतवास करके राजाजी ने मानो ग्रपने अन्दर नई शक्ति का संचार कर लिया। देश-प्रेम की लहरें फिर उनके मन मस्तिष्क में उठने लगीं। सन् १९३३ में प्रान्तीय

असेम्बलियों का फिर चुवाव होने वाला था। राजाजी के अतिरिक्त मद्रास प्रांत में कांग्रेस को जिताने वाला योग्य व्यक्ति अन्य कोई नहीं था। अतः समस्त देश ने राजाजी से राजनीतिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रार्थना की, परिस्थिति को देखते ही राजाजी फिर राजनीति में आ कूदे और राजाजी के प्रशंसनीय प्रयत्न के द्वारा ही मद्रास में कांग्रेस को पूरी सफलता मिल गई।

जब कांग्रेस ने मंत्री-मण्डल बनाने का फैसला किया तो राजा जी से मद्रास के प्रधान मन्त्री बनने की प्रार्थना की गई। राजाजी इस पर सहमत हो गये। उन्होंने एक बहुत ही उत्तम मंत्रि-मंडल बनाया। सरकार समझती थी "हिन्दुस्तानियों को अभी शासन करना नहीं आता है, वे तो बस गालियाँ देना, सरकार की बुराईयाँ करना और गौरांग अफसरों से द्वेष करना ही जानते हैं।" पर राजाजी ने सरकार के इन सब आरोपों को निष्फल कर दिया। उस समय के अन्य प्रांतों में जहाँ गवर्नरों और मंत्रियों में नहीं बनती थी, बात बात पर जहाँ कशमकश हो जाया करती थी, वहीं राजाजी अपनी बुद्धि-विशालता और चतुरता के कारण, सब समस्याओं को स्वतन्त्र रूप से हल कर देते थे। आपने मद्रास गवर्नर को किसी भी विषय में शिकायत करने का अवसर ही नहीं दिया।

वास्तव में देखा जाय तो सन् १६३७ से १६३६ तक का यह मंत्रित्व-काल राजाजी का सर्वोत्तम काल था। इसी समय में आपने अपनी अलौकिक मेधाबुद्धि से मद्रास प्रांत तथा देश की महान् सेवाएँ कीं। जिन बुराइयों की आप आरम्भ से निन्दा किया करते थे और प्रांत भर से जिन नशीली वस्तुओं को छोड़ने का आप आग्रह करते थे, उन्हीं सब चेष्टाओं को अब आप सक्रिय रूप देने

लगे। आपने मद्रास के अनेक नगरों में शराब-बंदी की घोषणा कर दी। यद्यपि इससे प्रांतीय सरकार को हजारों रुपयों की आमदनी से हाथ धोना पड़ा, पर आपने इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं की और शराब-बंदी को सफल बनाकर आमदनी को अन्य नवीन रीतियों से बढ़ा लिया। आपने प्रांतीय आय में भी कमी नहीं आने दी। नशीली वस्तुओं को रोकने के अतिरिक्त राजाजी ने अछूतों के लिए मन्दिरों के द्वार खुलवा दिये। दक्षिण भारत में कितनी ही भाषाओं के होते हुए भी, राजाजी ने हिन्दी का प्रचार करना भी आवश्यक समझा। यद्यपि वे संस्कृत और तामिल भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे, पर हिन्दी की उपयोगिता समझकर उन्होंने मद्रास प्रांत के स्कूलों में हिन्दी भाषा अनिवार्य कर दी। तभी आप दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के उपाध्यक्ष चुने गये। प्रांत के अनेक विद्वानों ने आपके हिन्दी प्रचार को रोकना चाहा, पर राजा जी अपनी बात पर दृढ़ ही रहे और सफलता प्राप्त की। अपने मंत्रित्व काल में राजाजी घर पर ही एक झूलेदार कुर्सी पर काम किया करते थे तथा यहीं पर व्यक्तियों से भेंट करते थे; भले ही आने वाले व्यक्तियों में कोई सरकारी अफसर हो या कोई प्रतिनिधि।

राजाजी सन् १९३९ तक प्रधान मंत्री रहे। संसार का द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया था। अंग्रेजों ने जब कांग्रेसियों को युद्ध उद्योग में सम्मिलित होने को बाध्य किया तो समस्त कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। अतः राजाजी ने भी अपने प्रधान मंत्री के पद से स्तीफा दे दिया।

इसके कुछ दिनों बाद ही सन् १९४०-४१ मे राजाजी को सरकार ने भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत एक वर्ष का कारावास दे दिया। जेल में भी राजाजी अपने पूर्व नियम के अनुसार रहते

थे। वे अपना सारा काम स्वयं ही किया करते थे, जैसे, जेल की कोठरी को साफ करना, बर्तन माँजना, कपड़े धोना, चर्खा चलाना और पुस्तकों का अध्ययन करना आदि। जेल में ही लिखी गई उनकी पुस्तक "(Chats behind bars)" "सीखचों के भीतर बातें" अधिक लोकप्रिय है। सादा जीवन और उच्च विचार वाली कहावत आपके जीवन पर पूर्ण चरितार्थ होती है।

सन् १९४२ में राजाजी छोड़ दिये गये। भारतवासियों को आपकी रिहाई से अत्यधिक प्रसन्नता हुई तथा राजाजी का खूब आदर-सत्कार किया गया।

राजाजी ने देखा कि समस्त भारत पर मुस्लिम-लीग का प्रभाव बढ़ता जा रहा है और प्रत्येक मुसलमान पाकिस्तान की माँग करने लगा है। साथ ही दक्षिण के कुछ व्यक्ति द्रविड़-स्थान की आवाज उठा रहे हैं। बिहार तथा छोटा नागपुर आस-पास रहने वाली निम्न जातियां भी अपना एक नवीन देश बनाने की चिन्ता में हैं। इस प्रकार भारत के कितने ही प्रांत अपनी नई-नई आवाजें उठा रहे थे। एकता का सूत्र टूटता जा रहा था। भारत की पूर्वी सीमा पर जापान को सेनाएँ अलग बढ़ रही थीं। महायुद्ध में अंग्रेजों को भी असफलता के आसार दिखाई दे रहे थे। अतः अंग्रेजों ने चाहा कि भारत से सहायता लेकर वे अपने सीमा भाग को जापानियों के विरुद्ध दृढ़ बनावें। इसके लिये कांग्रेस से समझौता करने के लिये सरकार ने एक योजना बनाई।

अंग्रेज सरकार की इसी योजना को लेकर विलायत के महान् नेता सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भारत आये— इसी कारण यह "क्रिप्स योजना" कहलाती है। यद्यपि इस योजना से भारत को कोई ठोस वस्तु नहीं मिलती थी पर राजाजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सबको इसे मान लेने की राय दी किन्तु भारत की किसी भी

संस्था ने इसे नहीं अपनाया । अपनी अलौकिक दूरदर्शिता और कूटनीतिज्ञता को दिखाते हुए आपने अपने पक्ष में ३२ पृष्ठ की एक पुस्तक "दी वे आउट", (एक ही मार्ग) लिखी पर इसका प्रभाव विपरीत हुआ । भारत की तमाम जनता और संस्थाओं ने राजाजी की खूब कटु आलोचना की । सभी राजाजी के विरुद्ध हो गये । राजाजी ने बार बार अपने पक्ष की सार्थकता दिखाई पर जनता ने उनकी एक नहीं सुनी । अतः राजाजी ने कांग्रेस की कार्य समिति से त्यागपत्र दे दिया और राजनीतिक जीवन से एक बार फिर अलग हो गये । क्रिप्स योजना असफल हो गई ।

भारत में हिन्दू-मुसलमानों में द्वेष और ईर्ष्या की खाई चौड़ी होती जा रही थी । कांग्रेस हिन्दुओं की और मुस्लिम लीग मुसलमानों की राजनीतिक संस्थाओं के रूप बन रही थी । दोनों में आपसी वैमनस्य भी बढ़ रहा था । अतः सन् १९४२ में जब कांग्रेस ने "भारत छोड़ो" प्रस्ताव उपस्थित किया तो मुस्लिम लीग ने कोई साथ नहीं दिया । इस प्रस्ताव के कारण जहाँ कांग्रेस के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, वहीं राजाजी कांग्रेस से पृथक् हो जाने के कारण गिरफ्तार नहीं किये गये ।

इन दिनों भारत में बढ़ने वाले हिन्दू-मुस्लिम द्वेषों को बढ़ने से रोकने के लिए वे कोई उचित हल निकालना चाहते थे । राजनीतिक वातावरण से दूर होकर वे इसी समस्या के पीछे पड़ गये और लगभग दो वर्ष तक इसी में उलझे रहे ।

अन्त में सन् १९४४ में आपने हिन्दू-मुस्लिम एकता का हल निकाल ही लिया और गांधी-जिन्ना वार्ता के लिए आपने एक आधार निर्माण किया जो सी० आर० फार्मुला के नाम से विख्यात है, यद्यपि इसके अनुसार महात्मा गांधी और जिन्ना की भेंट हुई, पर जनता इसके विरुद्ध थी और जिन्ना की हठधर्मी के कारण यह

भेंट सफल नहीं हो सकी । हिन्दू-मुसलमानों में द्वेष बढ़ता ही गया ।

इतना होने पर भी अंग्रेजों को यह तो प्रतीत होने लगा था कि भारत को अब स्वतन्त्र करना ही होगा । सन् १९४२ में गिरफ्तार किये हुए कांग्रेस नेता जेल से रिहा कर दिये गये । आजाद हिन्द फौज के सौनिकों की मुकदमे में जीत हो जाने के कारण काँग्रेस का पक्ष और भी सबल हो गया । अतः अंग्रेजी सरकार ने शिमला में समस्त भारत के नेताओं को बुलाकर स्वतन्त्रता सम्बन्धी चर्चा की। इस महत्वपूर्ण चर्चा में भाग लेने के लिये राजाजी भी शिमला पहुँच गये । राजाजी ने बहुत प्रयत्न किया कि इस बार भी कोई समझौता हो जावे और देश को शीघ्र ही स्वतन्त्रता मिले, पर यहां भी कोई समझौता नहीं हो सका ।

अन्त में कड़े परिश्रम के बाद एक अन्तरिम सरकार निर्मित होने का निश्चय हुआ । सन् १९४६ में प्रांतीय चुनाव में यद्यपि राजाजी हार गये थे, पर निराश नहीं हुए और देश के कार्य में जुटे ही रहे । अतः अंतरिम सरकार बनते ही कांग्रेस ने फिर आपको आमन्त्रित किया । राजाजी ने किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत मना-अपमान पर विचार न करके, कांग्रेस की ओर से अंतरिम मंत्रि-मण्डल में सम्मिलित होने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया । अंतरिम सरकार में आप उद्योग और रसद मंत्री चुने गये । कुछ दिनों बाद मुस्लिम लीग ने भी इस सरकार में भाग लेना स्वीकार कर लिया । राजाजी दोनों को ही उचित परामर्श देकर अपनी निष्पक्षता सिद्ध करते रहे ।

पर यह अन्तरिम सरकार भी अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सकी । मुस्लिम लीग पाकिस्तान लेकर ही रही । भारत का विभाजन हो गया । राजाजी ने क्रिप्स-योजना मानने के लिये जो

'एक ही रास्ता' सुझाया था, वही सबके सामने आया और, राजाजी की दूरर्शिता के सामने सबको हार माननी पड़ी बंगाल को दो भागों में बांट दिया गया । पूर्वी बंगाल पाकिस्तान में और पश्चिम बंगाल भारत में आ गया ।

इसी पश्चिम बंगाल की एक सीमा पर पाकिस्तान है। अतः पाकिस्तानी गुण्डों का बार-बार भारत में घुस आना हानिप्रद था। राजाजी को ही सरकार ने इस योग्य देखा जो बंगाल को पाकिस्तानी गुण्डों से बचा सकते थे, और साथ ही वहाँ की उन्नति भी कर सकते थे। अतः सन् १९४७ में आप पश्चिमी बंगाल के गवर्नर बना दिये गये। नित्य नई-नई खड़ी हो जाने वाली समस्याओं को राजाजी अत्यन्त कुशल हाथों से सुलझाया करते थे। बंगालियों में प्रांतीयता की भावना यद्यपि सीमा से अधिक है और वहाँ की कांग्रेस में तो कितनी ही बुराइयों ने वर्षों से जड़ जमा ली थी, पर इससे भी राजाजी निराश नहीं हुए। आपनें अत्यन्त चतुरता से समाज और जनता के दुश्मनों को दबाये रखा।

राजाजी में प्रान्तीयता और ऊँचे-नीचे का भाव लेशमात्र भी नहीं है। इसी कारण बंगाल के हर व्यक्ति से मिलने पर उन्हें प्रसन्नता होती थी। कभी वे बंगाल के बाल-उत्सवों में हँसते थे तो कभी बंगाल के भोले ग्रामीणों को उपदेश देते थे तो कभी सामाजिक सम्मेलनों में भाग लेते थे। अपनी हृदय की विशालता, नम्रता, बुद्धि प्रवीणता के कारण आपने सारे बंगाल को मोह लिया था। कला और संगीत के प्रान्त बगाल में आप बहुत ही प्रसन्न रहते थे। अपनी चतुरता के कारण ही आपने बंगालियों में से प्रान्तीयता की अहितकारी भावना को बहुत अधिक मात्रा में दूर कर दिया।

सन् १९४८ में जब विलायत के बकिंघम महल में राजाजी को भारत के गवर्नर जनरल बनाने की घोषणा हुई तो सर्वत्र भारत में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। अभी तक किसी भी भारतीय को इतना उच्च पद नहीं मिला था। राजाजी ही प्रथम भारतीय थे जो गवर्नर जनरल के पद के योग्य ठहराये गये। अतः सन् १९४८ में आप भारत के गवर्नर जनरल बना दिये गये।

आपके गवर्नर जनरल होते ही दिल्ली के सरकारी भवन की दशा ही बदल गई। जगह-जगह दीवारों पर श्री रामकृष्ण परमहंस और राष्ट्रपिता बापू के चित्र लटकाये गये। गवर्नर जनरल पर होने वाले कितने ही अनावश्यक खर्चों में कमी कर दी गई। राजाजी के गवर्नर जनरल होते हुए, भारत की सैंकड़ों रियासतों को केन्द्र में सम्मिलित कर लिया गया। हैदराबाद जैसी धनी, बलवती और मुस्लिम रियासत को भारत में मिलाने का कार्य राजाजी की प्रेरणा तथा मार्ग-प्रदर्शन से ही सम्पन्न हुआ।

जिस कुशलता और दूरदर्शिता से राजाजी मद्रास के मंत्री के रूप में कार्य किया करते थे, उसी कुशलता से उन्होंने भारत के गवर्नर जनरल के पद पर रहकर कार्य किया। उनकी इस उन्नति को देखकर हमें उनके नाम की सार्थकता प्रतीत होती है।

आज से ७६ वर्ष पूर्व जब होसूर ग्राम में आपने जन्म लिया था, तो एक ज्योतिषी ने घोषणा की थी "इनकी कुंडली में चक्रवर्ती राजा होने के लक्षण हैं।" आज हम देख रहे हैं कि आप "राजा" और "चक्रवर्ती" दोनों ही हैं। आपको आदर-भाव के कारण ही राजाजी के नाम से पुकारते हैं।

राजाजी का कृष शरीर हैं, कद लम्बा है; पर चेहरा अत्यन्त तेजवान है। उनकी काली ऐनक में आंखें सदैव मुस्कराती ही रहती हैं। शरीर पर खादी का श्वेत कुर्ता, खादी का श्वेत दुपुट्टा

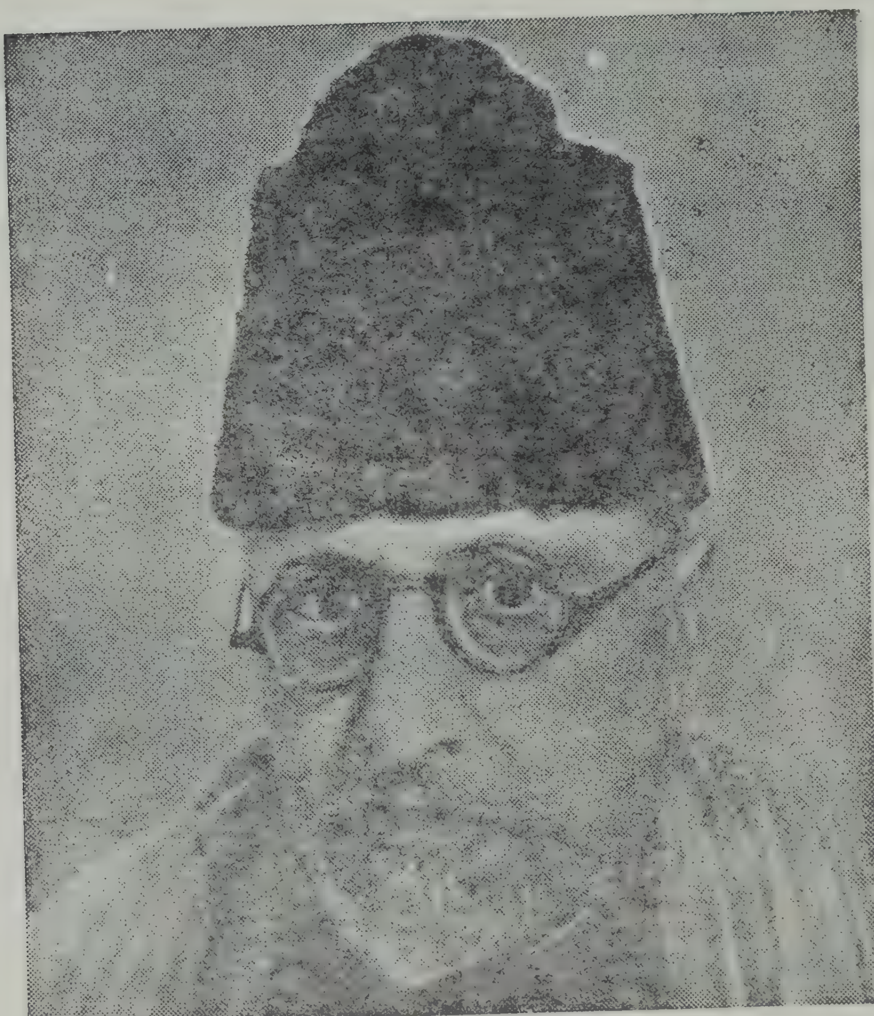
और श्वेत खादी की धोती रहती है। पैरों में चप्पल और हाथ में छड़ी लिये हुए श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य रहते हैं। अपने महान् पद का अभिमान अथवा अपनी बुद्धि पर शान उन्हें तनिक भी नहीं है। वे सदैव मुस्कराकर सबका स्वागत करते हैं। राजाजी के भोजन में अंगूर और दही की अधिकता है। साथ ही वे गर्म-गर्म कॉफी पीना भी नहीं भूलते हैं।

इस प्रकार राजाजी में हम गम्भीरता, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञता और सरलता आदि कितने ही सद्गुणों का समावेश पाते हैं। इन्हीं कारणों से आज आपको भारत के चाणक्य के नाम से पुकारा जाता है।

——

: ६ :

मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद



आपके पिता मुहम्मद खैरुद्दीन प्रसिद्ध सूफी विद्वान् थे। अंग्रेजों के अत्याचार से विवश होकर उन्हें भारत से भाग जाना पड़ा किन्तु वे विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे इसलिये मक्का

मदीना में जाकर उन्होंने ख्याति प्राप्त की। मक्का में जुबेदा नहर के संस्कार के कार्य में उन्हें अपूर्व यश प्राप्त हुआ। वहीं उन्होंने एक धर्म गुरू की कन्या से विवाह किया, उन्हीं के गर्भ से सन् १८८८ ई० में आजाद का जन्म हुआ। १० वर्ष तक अरब के धार्मिक वातावरण में ही उनका पालन पोषण होता रहा।

आपकी मातृ भाषा अरबी थी। उनकी शिक्षा की व्यवस्था कलकत्ते में हुई। पिता का प्रभाव पुत्र पर पर्याप्त था। वे अध्ययन में अत्यन्त रुचि लेते और बड़ी तत्परता से नवीन बात सीख लेते। 'दर्से निजामी' जिसका पाठ्यक्रम चौदह वर्ष का था आपने केवल चार वर्ष में समाप्त कर दिया। आपके पिता प्राचीन शैली के पक्षपाती थे और पुरातन के प्रति उनकी बड़ी ममता थी। अस्तु आपकी शिक्षा घर पर ही होती रही—वे किसी अंग्रेजी स्कूल में नहीं भेजे गये। सन् १९०५ ई० में अरबी की शिक्षा ग्रहण करने के लिये आप काहिरा के अल अजहर विश्व विद्यालय में भेजे गये। परन्तु वहां से आप दो ही वर्ष के उपरान्त लौट कर चले आये।

आप एक प्रतिभाशाली और दृढ़ विचार वाले चरित्रवान व्यक्ति थे। कलाकार एवम् पत्रकार की प्रतिभा आपमें प्रारम्भ ही से थी। पूर्ण युवा होने के पूर्व ही उन्होंने अपनी प्रतिभा से अनेक विद्वानों को आकर्षित कर लिया था। हाली और मोहिसिमुल-मुल्क जैसे विद्वान् भी आपके प्रसंशक थे। चौदह वर्ष की अल्प अवस्था में जब विद्यार्थी शुद्ध रूप से वाक्य निर्माण भी नहीं कर सकते आपने 'नौरंगे आलम' जैसे प्रौढ़ पत्र का सम्पादन किया। इस पत्र की कविता प्रधानता ने मौलाना की काव्य प्रतिभा को पूर्ण विकसित किया तभी से आप अपने नाम के साथ 'आजाद' उपनाम भी लिखने लगे। वस्तुतः यह नाम साकार रूप से सार्थक भी हो गया।

१८-२० वर्ष की अवस्था में आप विदेश भ्रमण को गये। इस यात्रा ने आपके हृदय में एक नवीन क्राँन्ति श्रौर परिवर्तन की भावनाओं को जन्म दिया। राष्ट्रीय भावनायें उनमें जाग्रत होने लगीं श्रौर जब स्वदेश लौट कर आये तो अंग्रेजी साम्राज्य की नीति को जैसा उन्होंने समझा, उन्हें उससे श्रसन्तोष हुश्रा। सैयद अहमद-खाँ श्रौर अलीगढ़ विश्व विद्यालय की निति एवम् वातावरण का भी उन्होंने अध्ययन किया। साथ ही उन्होंने इस्लाम धर्म की वास्तविकता पर भी एक विहंगम दृष्टि डाली। इस प्रकार पूर्ण विवेचनात्मक अध्ययन के उपरान्त उन्होंने देश के तत्कालीन वातावरण पर अपनी एक निजी सम्मति स्थापित की। उन्हें विश्वास हो गया कि अंग्रेज अपनी शासन व्यवस्था जमाये रखने के लिये भारत में मुसलमानों को उकसा रहे हैं। हिन्दू और मुसलमानों के बीच वे विद्वेश पूर्ण भाव उत्पन्न कर रहे हैं जिससे कि राष्ट्रीय भावनायें देश में न पनप सकें। श्रस्तुः ऐसे समय में वे भारतीय मुसलनानों का सही पथप्रनर्शन करने के लिये व्याकुल हो उठे।

जून सन् १६१२ ई० में इन्हीं विचारों की प्रेरणा और घुटन से विकल होकर उन्होंने 'श्रल हिलाल' नामक पत्र प्रारम्भ किया। उनके विचारों की घुटन इस पत्र में स्पष्ट होकर मन के बोझ को हल्का करने लगी। जन-भावनाश्रों और यथार्थवादी विचारों का प्रकाशन इस पत्र में प्राप्त कर जनता इस पत्र को श्रपना ही पत्र समझने लगी। उस जमाने में छह मास में ही इस नये पत्र की ग्राहक संख्या ग्यारह हजार हो गई। इस पत्र में आपके द्वारा लिखे गये अग्रलेख टिप्पणियाँ और आलोचनायें जनता में बड़े चाव व उत्साह के साथ पढ़ी जाती। दूसरी ओर ऐसे पत्र की उत्तरोत्तर लोक प्रियता सरकार के हृदय में कांटे की भाँति चुभने लगी। अल-हिलाल के समक्ष अनेक बाधायें आने लगीं लेकिन उसका

प्रकाशन और सम्पादन और भी प्रगति के साथ चलने लगा । देश में नव्य चेतना और जागरण की एक नवीन लहर फैल गई। सरकार को यह नहीं भाया। पत्र की जमानत मांगी गई और प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध लिखने के अभियोग में पत्र की जमानत जब्त करली गई। इससे पत्र के प्रति जनता का प्रेम और भी बढ़ गया। ऐसी प्रति-क्रिया देखकर सरकार दंग रह गई और अन्ततः उन्हें पत्र बन्द करने का आदेश ही देना पड़ा। पत्र बन्द हो गया। इस साम्राज्यवादी तानाशाही को मौलाना सहन नहीं कर सके। आपने तुरन्त 'अल-हिलाल' के स्थान पर 'अल बलाग' नामक मत्र का प्रकाशन व सम्पादन आरम्भ कर दिया। आपकी इन विद्रोही प्रवृतियों का परिणाम यह हुआ कि आप सन् १९१५ ई० की सात अप्रेल को बंगाल से निष्कासित कर दिये गये। ऐसा कहा जाता है कि सरकार द्वारा आपका निष्कासन आपके विरुद्ध अलीगढ़ विचार धारा के प्रचार व प्रसार के कारण हुआ। जो भी हो निर्वासन के बाद आप रांची जा बसे। वहां भी सरकार ने आपका पीछा नहीं छोड़ा और आपको नजरबन्द कर लिया जहाँ आप सन् १९२० ई० के आरम्भ तक नज़रबन्द रहे और बाद में मुक्त कर दिये नये।

पंजाब के काले कानून ने देश में एक नई हलचल पैदा करदी थी। अंग्रेजों की खिलाफत नीति ने तो सम्पूर्ण विश्व के मुसल-मानों पर एक साथ ही प्रहार किया था। इसके विरुद्ध, ऐसे कानून की प्रतिक्रिया स्वरूप एक विकट आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। आप ज्योंहि जेल से छूटे सन् १९२० ई० की जनवरी की ८ तारीख को दिल्ली में महात्मा गांधी से मिले। वहाँ देशबन्धु, अलीबन्धु और हकीम अजमलखाँ आदि ने एक साथ बैठकर कई दिनों बाद यह निर्णय किया कि खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय।

श्रान्दोलन प्रारम्भ हो गया। सम्पूर्ण देश में क्रांति की मानो एक भीषण लहर दौड़ गई। देश के कोने कोने में पूरे जोश और उत्साह के साथ श्रान्दोलन बढ़ने लगा। गांधीजी के आह्वाहन पर देश के बड़े बड़े वकील अपनी वकालत छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े। पं० मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल, देशबन्धु दास, राजगो-पालाचार्य, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई जैसे वकील श्रान्दोलन का संचालन करने लगे। सरकार का दमन चक्र चला। गिरफ्तारियाँ होने लगीं। आप बन्दी बना लिये गये। परन्तु अदालत में श्रापने ब्रिटिश न्याय की बड़ी जोरदार खिल्ली उड़ाई श्रौर परिणाम स्वरूप आपका मुकदमा तीन महिने तक टाला जाता रहा। आपका अदालत में दिया गया यह वक्तव्य एक स्थाई सामग्री है जो केवल तत्कालीन परिस्थिति का ही एक चित्र नहीं है बल्कि आपकी विशाल राष्ट्रीयता और देश प्रेम का भी एक प्रमाण है। आपका अध्ययन और इस्लाम धर्म के प्रति आपकी कितनी जानकारी थी यह भी इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है। सच तो यह है कि यह एक ऐतिहासिक निबन्ध है जो ब्रिटिश काल में सबसे पहिले इस प्रकार न्यायालय में दिया गया था। स्वयं गांधीजी ने कहा, "यह वक्तव्य खिलाफत और राष्ट्रवाद पर मौलाना के विचारों का उत्कृष्ट निबन्ध है।"

भारतीय राष्ट्रीय संग्राम में खिलाफत आन्दोलन के दिन वास्तव में बड़े ऐतिहासिक दिन हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदाय के लोगों में इतनी प्रगाढ़ मित्रता, सहकार और सहयोग की भावना फिर कभी देखने को नहीं मिली। इन दिनों मुसलमानों ने गोबध बन्द कर दिया और हिन्दुओं ने खिलाफत में खुलकर योग दिया। परन्तु अंग्रेजों की फूट नीति ही सफल रही। उन्होंने साम्प्रदायिक-विद्वेश की भावनायें समाज में पुनः फैलादीं। नीच

और स्वार्थी लोगों ने अपना धर्म चन्द चांदी के टुकड़ों और नौकरियों के लिये बेच दिया। इस अप्रत्याशित घटना से राष्ट्रीय संगठन को कड़ी चोट लगी। गांधीजी ने इस अप्रिय साम्प्रदायिक भावना के प्रति एक लंबा उपवास किया। एकता सम्मेलन बुलाया गया प्रस्ताव पास किये गये। परन्तु कोई असर न हुआ। हकीम अजमलखाँ और आपने मिलकर ऐकता के दृढ़ प्रयत्न किये और अन्त तक वे अपने उन्हीं सिद्धान्तों पर अटल रहे।

कांग्रेस संगठन की शिथिलता और साम्प्रदायिक दंगों की आग से देश को बचाना आसान काम नहीं था। सच तो यह है कि ये कुछ वर्ष आत्म परीक्षा के दिन थे। अंग्रेजों के दमन चक्र और शोषण से पीड़ित भारतीय जनता के असन्तोष को एक संगठित शक्ति में संवारना बड़ा महत्वपूर्ण कार्य था। आन्दोलन पर आन्दोलन चल रहे थे। साइमन कमिशन, प्रिंस आफ वेल्स, विदेशी वस्तु बहिष्कार जैसे कितने ही आन्दोलन देश में सर्वत्र बल पकड़ते जा रहे थे। इन सभी आन्दोलनों में आप अग्रिम पंक्ति में होते थे। आपने स्पष्ट घोषणा कर दी जब तक अंग्रेज भारत से नहीं चले जाते तब तक ये समस्यायें हल नहीं हो सकतीं।

कांग्रेस के संगठन में काम करने के साथ ही साथ आपने 'जमैयत-उल उलमा-ए हिन्द' नामक संस्था को भी अनुप्राणित किया। एक समय था जब जमैयत भारतीय मुसलमानों की एक ही सच्ची राष्ट्रीय संस्था थी। प्रगति विरोधी मुसलमान इसका लोहा मानते थे। उस समय प्रगति विरोधी और अंग्रेजी एजेन्टों में जमैयत को पथ भ्रष्ट करने का प्रयास किया लेकिन वे असफल रहे और आप अटल होकर राष्ट्रीय ध्वज सम्भाले रहे।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास के पिछले वर्षों में मौलाना आजाद का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण रहा हैं। वे कई बार

राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय आप ही राष्ट्रपति पद पर आसीन थे। उन कठिनाइयों के दिनों में इस पद पर रह कर आपने देश पर अपनी कुशलता की अमिट छाप छोड़दी। गांधीजी की विचारधारा को उन्होंने आत्मसात कर लिया। रचनात्मक कार्यक्रम में वे विशेष रुचि लेते रहे।

मौलाना आजाद का व्यक्तित्व वास्तव में बाह्य और अन्तः से अत्यन्त शुद्ध और प्रभावशाली था। उनकी शक्ति प्रबल और लेखन कला अद्वितीय थी! उनकी वाणी में ओज और नेत्रों में नेतृत्व की आभा थी। हृदय में दृढ़ता और मन में स्फुर्ति थी। पठान सा ऊँचा कद, बड़ा ललाट जिस पर आधा भाग ढक लेने वाली तुर्की टोपी और ओजस्वी मुख मुद्रा बड़ी आकर्षक थी। आप में अपने विरोधियों को बुद्धि और नीति दोनों प्रकार से पराजित करने की अपूर्व क्षमता थी। यही कारण था कि मौलाना आजाद स्वाधीन भारत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।

१५ अगस्त सन् १९४७ के पश्चात् जब स्वतन्त्र भारत का मंत्रि-मण्डल बना तो आप उसके एक मंत्री बने। चुनावों में आप लोक सभा के दो बार सदस्य चुने गये और दोनों बार आप केन्द्रीय मंत्रि-मण्डल के मंत्री रहे। प्रधान मंत्री नेहरू की अनुपस्थिति में प्रधान मंत्री का कार्य भार भी आप ही संभालते रहे। केन्द्रीय मंत्रि-मण्डल में शिक्षा मंत्री के पद पर रह कर आपने बुनियादी शिक्षा व विश्व विद्यालयों के शिक्षा क्रम में भी अनेक प्रगतिशील कार्यारम्भ के लिये आयोगों की नियुक्ति की। शिक्षा संस्थाओं में अधिक से अधिक अनुदान दिलवाकर अपनी शिक्षा प्रियता का अनुपम उदाहरण रखा।

वे अंतिम दिनों में भी जब ७० वर्ष के थे उसी लगन और दृढ़ता से काम करते रहे जैसा पहिले किया करते थे। उनका सम्मान सर्वत्र था। उनके त्याग और राष्ट्रीयता ने उनके व्यक्तित्व को निखार दिया।

एक दिन यकायक उन्हें रक्त चाप से पीड़ा हुई और उससे उन्हें भीषण आघात पहुँचा। उनके शरीर का एक भाग क्रिया-हीन हो गया। वाणी रुंध गई और अंग शिथिल पड़ गये। इस आकस्मिक रुग्णता ने देश को चिन्ता मग्न कर दिया। अनेक बड़े बड़े चिकित्सकों ने उनका उपचार किया किन्तु कोई उन्हें बचा न सका। अन्त में २२ फरवरी सन् १९५८ ई० को आप विशाल यश व कीर्ति की अक्षयथाती छोड़ कर चल बसे।

: ७ :

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस



भारतीय स्वाधीनता संग्राम में, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

अपने महान् त्याग और बलिदान के कारण अमर हो गये हैं। उनका साहस, विपत्तियों में निर्भयता के साथ कूद पड़ने का उत्साह, देश के लिए कष्ट सहने और अपने प्राणों का भी मोह न करने की भावना देश के इतिहास में अद्वितीय है। नेताजी अब इस संसार में नहीं हैं, कहते हैं कि वे किसी वायुयान दुर्घटना के शिकार हुए परन्तु आज करोड़ों भारतीयों के हृदय में उनके प्रति सम्मान की भावना है। ऐसा महान् व्यक्ति मर कर भी नहीं मरता।

देश भक्त सुभाषचन्द्र बोस का जन्म, कटक में बाबू जानकीनाथ के यहाँ २३ जनवरी सन् १८९७ ई० को हुआ था। वे अपनी पिता की नवीं सन्तान थे। इनके पहिले पांच भाई और तीन बहनें और जन्म ले चुकी थीं। यद्यपि बाबू जानकीनाथ की आर्थिक अवस्था अच्छी थी तथापि बालक सुभाष की शिक्षा दीक्षा पर अधिक ध्यान न दिया जा सका। जिस घर में बहुत से बाल-बच्चे हों वहाँ किसी एक बालक की शिक्षा पर अधिक व्यय करने का ध्यान देने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अस्तु बालक सुभाष के पालन-पोषण और शिक्षा की व्यवस्था घर के अन्य बालकों के समान ही हुई।

बाबू जानकीनाथ गुणी व्यक्ति थे। उनके यहां प्राय:, विद्वान् पुरुषों की मण्डली जुड़ती थी और शास्त्र चर्चा हुआ करती थी। जब विविध विषयों पर वार्तालाप चलता था तो घर के बालकों पर उसका प्रभाव कैसे न पड़ता! धर्म और देश-भक्ति की यही प्रारम्भिक चर्चा बालक सुभाष के आगामी जीवन में उपयोगी सिद्ध हुई। घर में शारदा नाम की एक नौकरानी थी जो बड़े प्यार से सुभाष को 'राजा' कह कर पुकारती थी। सुभाष के ऊपर इस

नौकरानी का विशेष ध्यान था और वही इनकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करती रहती थी। इनकी माता प्रभावती के ऊपर अपनी कई सन्तानों को खिलाने पिलाने का भार था। इस दशा में उन्हें किसी एक बालक की ओर विशेष ध्यान देने का अवकाश न था।

नेताजी का जन्म नेता बनने के लिये ही हुआ था। उन्हें खेल में भी किसी का अन्धानुकरण अच्छा न लगता था। "राजा-रानी" के खेल में भी राजा बनना ही अधिक पसन्द करते थे और नौकर न बनने का बहाना वे सदैव ही खोज निकाला करते थे। प्रारम्भ में पढ़ने लिखने में भी उनका ध्यान विशेष न लगता था। उनके भाई शरतचन्द्र पढ़ने लिखने में सबसे तेज थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में सुभाष बाबू प्रोटेस्टेन्ट युरोपियन स्कूल में भरती हुए। तीन साल तक सुभाष बाबू ने वहाँ बड़े परिश्रम से पढ़ा। वहाँ उनके साथ अंग्रेज बालक भी पढ़ते थे। उनके हृदय में भेदभाव छू तक न गया था किन्तु वे भारत या भारतवासियों की बुराई कभी न सुन सकते थे। जो अंग्रेज बालक या अध्यापक गोरे या काले का भेद भाव रखते थे उनके साथ सुभाष बाबू की कभी न पटती थी। कहते हैं एक बार किसी अंग्रेज अध्यापक के मुँह से स्वदेश की बुराई सुनकर उन्होंने उसके मुँह पर चाँटा मारा था।

उन दिनों भारत का वायसराय लार्ड कर्जन था। वह एक योग्य शासक था किन्तु उसमें एक बड़ा दोष यह था कि वह जनमत का आदर न करता था और उसके हृदय में भारतवासियों के लिये सहानुभूति न थी। उसी के समय में बंग-भंग हुआ। बंगाल के टुकड़े होते देख बंगाली युवकों का हृदय देश-प्रेम से भर गया और अंग्रेजों के विरुद्ध सारे देश में एक आन्दोलन मच

गया । सुभाष बाबू उस समय विद्यार्थी थे अतः इसमें भाग न ले सके ।

उस समय देश में स्वामी विवेकानन्द के भाषणों की बड़ी धूम थी । श्री सुभाष ने ये भाषण सुने और निश्चय कर लिया कि वे शक्तिशाली बन कर देश की दासता का विनाश करेंगे । शायद इन्हीं दिनों सुभाष ने ब्रह्मचर्यं पालन की भी प्रतिज्ञा की ।

सुभाष बाबू कलकत्ता में रह कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे । वहीं कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने सुना कि मिर्जापुर स्ट्रीट में डाक्टर सुरेश ने आश्रम स्थापित किया है जिसमें अविवाहित युवकों को देश की शिक्षा के लिये भरती किया जाता है । कुछ समय तक तो सुभाष बाबू सोचते रहे पर भला वे सोच विचार में ही अधिक समय कैसे नष्ट कर सकते थे । एक दिन वे भी उसी आश्रम में प्रविष्ट हो गये और डाक्टर सुरेश को आश्रम के संचालन में सहायता देने लगे । वहाँ इन्होंने वेदान्त और दर्शन की पुस्तकों का अध्ययन किया जिससे उनकी विचार धारा में महान् क्रांति हुई और वे सोचने लगे, ईश्वर क्या है ? इस संसार का वास्तविक आधार क्या है ? परन्तु वे किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके । एक दिन उन्होंने अनुभव किया कि बिना गुरु के ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है । अतः योग्य गुरु की तलाश में निकल पड़े । मथुरा, आगरा, गया, काशी दिल्ली आदि सारे प्रमुख नगरों की खाक छान डाली । अन्त में ये काशी में आकर रामकृष्ण आश्रम के स्वामी ब्रह्मानन्द के संसर्ग में आये ।

कुछ दिनों काशी में रहकर ये गया गये । वहाँ साधुओं में दुराचार देख इन्हें साधु समाज ही से घृणा हो गई । अतः ये घर लौट आये और पुनः इन्होंने अध्ययन आरम्भ कर दिया ।

अब श्री सुभाष बी० ए० का अध्ययन समाप्त कर एम० ए० की तैयारी करने लगे। उधर सुभाष के पिता का विचार हुआ कि उनको इंगलैण्ड आई० सी० एस० की शिक्षा के लिये भेजा जाय। किन्तु सुभाष ने इसका तीव्र विरोध किया। उन्हें यह बिल्कुल पसन्द न आया कि वे आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर सरकारी दमन चक्र का साधन बनें। परन्तु कालान्तर में घर वालों के बहुत समझाने पर वे जाने को तैयार हो गये।

किशोर सुभाष इंगलैण्ड में आकर केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में भरती हो गए। साथ ही इन्होंने वहां की 'हिन्दुस्तानी मजलिस' में भी भाग लेना आरम्भ कर दिया। यह इंगलैण्ड में भारतीयों की एक सभा थी जिसका उद्देश्य भारत के प्रमुख राजनैतिक नेताओं को निमंत्रित कर व्याख्यान कराना था। यूनिवर्सिटी में भारत का राजनैतिक इतिहास पढ़ कर सुभाष को अंग्रेजों और अंग्रेजी राज्य से ही घृणा हो गई। वह भली भांति परिचित हो गये कि किस प्रकार अंग्रेज हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराते हैं और अपनी शासन सत्ता को अक्षुण्य रखने के लिए देश के प्रभावशाली व्यक्तियों को ऊँचे-ऊँचे पद दे अपनी ओर मिला लेते हैं।

१६ जुलाई सन् १९२१ ई० को युवक सुभाष आई० सी० एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो स्वदेश लौट आये। इन्होंने भारत में आकर देखा तो भारत का रूप ही बदल गया था। चारों ओर महात्मा गांधी का अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन चल रहा था। सुभाष को अहिंसात्मक असहयोग में कोई तत्व दृष्टिगोचर न हुआ। वे महात्माजी से मिले पर साबरमती का सन्त इनके हृदय के भ्रम और सन्देहों को संतोषजनक रूप से निवारण न कर सका।

महात्माजी से निराश हो सुभाष कलकत्ता में देशबन्धु चितरंजन से मिले। देशबन्धु के त्याग-मय जीवन के सम्पर्क से सुभाष के पवित्र विचारों को पर्याप्त बल मिला। उनकी देश-भक्ति से भी सुभाष काफी प्रभावित हुए। कुछ समय के पश्चात् देशबन्धु ने, असहयोग आन्दोलन के कारण दण्डित विद्यार्थियों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करने के लिए नेशनल कालेज की स्थापना की और राष्ट्रीय विचारों का समर्थक एक पत्र भी निकाला। इन दोनों के सफलता पूर्वक संचालन का भार सुभाष बाबू को सौंपा गया। राष्ट्रीय महा-विद्यालय में सुभाष ने अथक परिश्रम से कार्य संचालन किया। इससे सुभाष बाबू नवयुवकों में चमक उठे और वे विशेष प्रशंसा एवं श्रद्धा के पात्र बन गये।

इसी समय इंगलैण्ड के युवराज प्रिन्स ऑफ वेलस भारत पधारे। काँग्रेस ने इनके स्वागत समारोह का विरोध किया। कलकत्ते में बहिष्कार संगठन का कार्य सुभाष के हाथों में था। सुभाष युवकों के विशेष प्रीति-पात्र थे। अतः उन्होंने इस संगठन का संचालन हजारों स्वयं सेवकों को बना कर किया। नौकरशाही सरकार भला यह सब कैसे देख सकती थी। उसने सुभाष बाबू को १४ फरवरी, सन् १९२२ को ६ महीने की सजा सुना दी।

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का प्रथम पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुआ।

सुभाष बाबू जब बन्दी गृह से मुक्त हुये तो बंगाल की जनता भयंकर बाढ़ के कारण त्रस्त और पीड़ित हो रही थी। आते ही सुभाष जनता की सेवा और सहायता करने में जी जान से जुट गये। उन्होंने बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए अनेकों सहायक कमेटियाँ बनाई जो घिरे हुए लोगों को बाहर निकालती और उनके खाने-पीने की व्यवस्था करती थी।

देशबन्धु कलकत्ता कारपोरेशन के चेयरमैन चुने गये। एग्जीक्यूटिव आफिसर के पद के लिए उन्हें सुभाष के अतिरिक्त और कोई न दिखा। सुभाष ने उक्त पद से जनता की जिस दक्षता एवं कार्य कुशलता से सेवा की है वह चिरस्मरणीय है।

सुभाष ज्यों-ज्यों जनता के विशेष सम्पर्क में आते गये त्यों-त्यों सरकार की भृकुटि टेढ़ी होती गई। अबकी बार उन्हें केवल सन्देह के आधार पर सरकार ने फिर बन्दी बना मांडले बर्मा जेल भेज दिया। वहाँ ढाई वर्ष बन्दी रहने के उपरान्त सुभाष रिहा कर दिये गये। जेल में रहने से सुभाष का स्वास्थ्य बहुत गिर गया।

सुभाष बिना अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किए राष्ट्रीय कार्यों में लग गये। नवयुवक संगठन भी उनकी अनुपस्थिति के कारण ढीला-सा पड़ गया था। सब से पहले उन्होंने नवयुवक संगठन की ओर ध्यान दिया और फिर से उसमें चेतना और जागृति भर दी।

उस समय मजदूरों की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। एक प्रकार से मिल मालिक मजदूरों का रक्त शोषण कर रहे थे। यह सुभाष बाबू से न देखा गया और वे फिर मैदान में आ डटे। उन्होंने मजदूरों का संगठन किया और जमशेदपुर तथा अन्य कारखानों में हड़तालें करवाईं। सुभाष बाबू ने हजारों लाखों मजदूरों का नेतृत्व कर उनकी कई माँगें मिल मालिकों से स्वीकार करवालीं।

कलकत्ता काँग्रेस के अधिवेशन में पं० जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बाबू ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास करने का भारी प्रयत्न किया। किन्तु उस समय इन लोगों का प्रस्ताव स्वीकार न हो सका। कांग्रेस ने सरकार को एक वर्ष का समय और दे दिया।

जनता सुभाष बाबू की विचार शक्ति एवं कर्तव्य-शीलता पर विमुग्ध तो थी ही अतः अपने इसी प्रेम और भक्ति का परिचय देने के लिये उसने सुभाष बाबू को सन् १६३८ ई० में, हरिपुरा कांग्रेस का अध्यक्ष स्वीकार किया।

सुभाष बाबू एक बार फिर त्रिपुरा कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के लिये खड़े हुए किन्तु इस बार उन्हें लोहे के चने चबाने पड़े। पूज्य महात्माजी ने इनके विरोध में डाक्टर पट्टाभिसीतारमैया का समर्थन किया। परन्तु फिर भी विजयश्री सुभाष को ही मिली। डाक्टर साहब के पक्ष में न केवल पूज्य महात्माजी ने ही नहीं अपितु कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों तथा अनेक बड़े-बड़े नेताओं ने प्रचार किया था। सुभाष बाबू को गौरवस्पद पद प्रदान कर वास्तव में जनता ने अपने नेता के प्रति हार्दिक प्रेम प्रकट किया। सुभाष बाबू कुछ समय तक तो अपने पद पर कुशलता पूर्वक कार्य करते रहे पर अन्त में कुछ कांग्रेसी नेताओं के असहयोग से तंग आकर उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।

सुभाष बाबू अब राजनीति से सन्यास ले अपने कलकत्ते वाले मकान में रहने लगे। उन्होंने सबसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया। अपनी योग्यता और दक्षता का दम भरने वाली प्रसिद्ध भारतीय पुलिस ने उनके मकान के चारों ओर घेरा डाल दिया। इस समय संसार प्रसिद्ध द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था।

२६ जनवरी सन् १६४१ ई० को 'सुभाष बाबू अपने मकान से गायब हो गये' यह समाचार पढ़, सारे देश में सनसनी फैल गई। कुछ समय उपरान्त सुभाष बाबू को बर्लिन रेडियो से बोलता सुनकर तो भारतीय जनता के आश्चर्य की कोई सीमा ही नहीं रही।

सुभाष बाबू बर्लिन किस प्रकार पहुँचे अब यह रहस्य नहीं रहा है। श्री उत्तमचन्द नामक एक व्यापारी ने इसे स्पष्ट कर दिया है। नेताजी यहाँ से पठान वेश में पेशावर, काबुल होते हुए बर्लिन पहुँच गये थे। मार्ग में सुभाष बाबू अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए भी बराबर आगे बढ़ते रहे और अन्त में बर्लिन और फिर बर्लिन से जापान की राजधानी टोकियो भी पहुँच गये।

सुभाष बाबू ने बर्लिन और टोकियो जाकर भारत की स्वतन्त्रता के लिये आजाद हिन्द फ़ौज का संगठन किया। नेताजी की संगठन शक्ति अद्वितीय थी। जापान और जर्मनी द्वारा बन्दी बनाये गये भारतीय सैनिक धड़ाधड़ आजाद हिन्द फ़ौज में भरती होने लगे। भारत की मुक्ति के कार्य में वहाँ के भारतीय नागरिक भी किसी से पीछे न रहे। उन्होंने अपने देश और अपने नेता के चरणों में तन, मन और धन सब कुछ न्यौछावर कर दिया। वास्तव में उस समय प्रत्येक भारतीय बालक, युवक और वृद्ध का उत्साह दर्शनीय था।

नेताजी द्वारा स्थापित आजाद हिन्द फ़ौज की वीरता, धीरता और स्वदेश के लिये मर मिटने की भावना इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

वीर सुभाष ने आजाद हिन्द फ़ौज का संगठन कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके अदम्य साहस और उत्साह ने ब्रिटिश सत्ताधारियों के हृदय में आतंक जमा दिया और सम्भव है नेताजी की इस अप्रत्यक्ष सहायता के कारण ही भारत को इतनी शीघ्र स्वाधीनता प्राप्त हो गई। आजाद हिन्द सेना के सेनापति बन कर जिस कुशलता से उन्होंने सैन्य संचालन किया वह उनके महान् सेनापतित्व का एक ज्वलन्त प्रमाण है। न जाने किस अनुशासन के बल पर नेताजी ने आजाद हिन्द सेना में मर मिटने

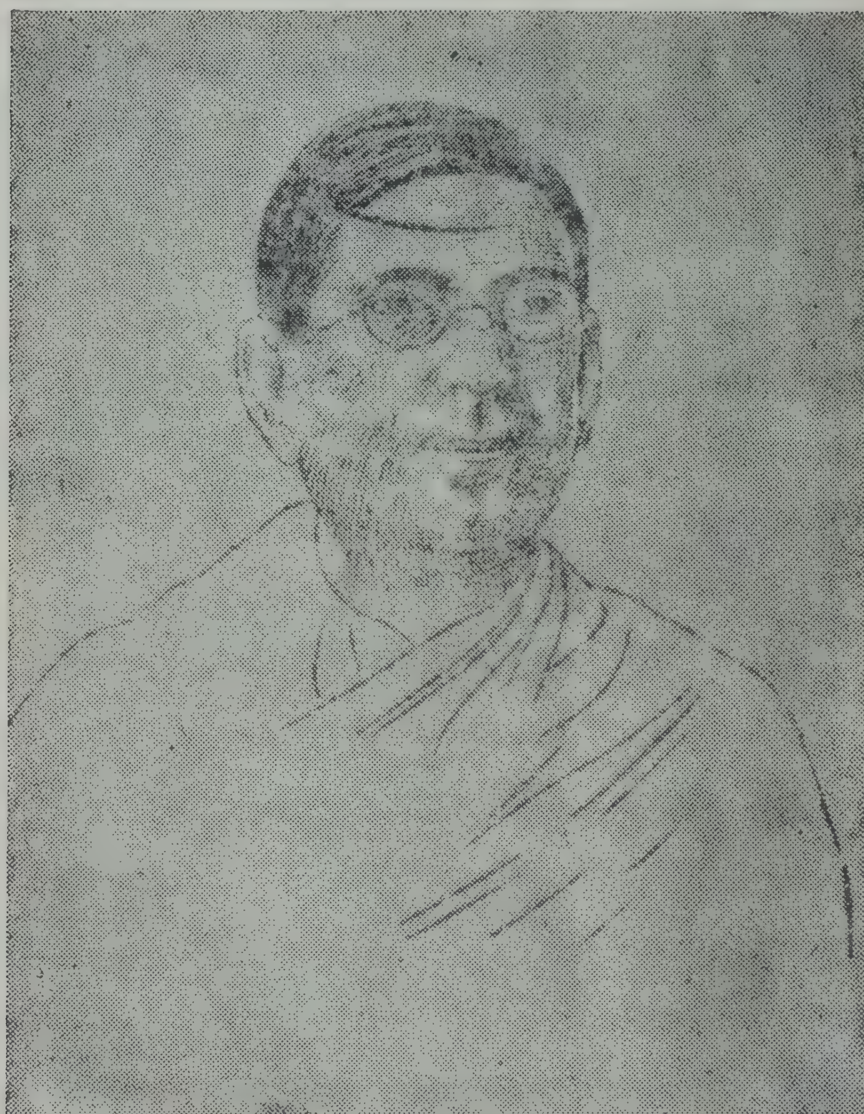
की अपूर्व भावना फूँक दी थी। हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रश्न जो भारतीय भाग्याकाश में धूमकेतु की भाँति अनिष्टकारी सिद्ध हुआ नेताजी ने उसे अनायास ही हल कर दिया। उनकी सेना में हिन्दू मुस्लिम सिपाही परस्पर जिस भ्रातृ-भाव से रहते थे वह सहोदर भ्राताओं में भी नहीं पाया जाता। वास्तव में नेताजी में संगठन की अद्‌भुत क्षमता थी।

जब जर्मन और जापानी सेनाओं ने आत्म समर्पण कर दिया तो आजाद हिन्द सेना के सम्मुख आत्म समर्पण के अतिरिक्त और कोई चारा न रहा। नेताजी अपनी सेना को आत्म समर्पण की आज्ञा देकर वायुयान से बर्मा से बैंककाक होते हुए टोकियो को रवाना हो गए किन्तु मार्ग में दुर्भाग्यवश वायुयान दुर्घटना के शिकार हुए।

१८ अगस्त सन् १९४५ ई० को नेताजी के स्वर्गवास की घोषणा टोकियो रेडियो से की गई जिसे सुनकर भारत शोक सागर में डूब गया।

: ८ :

देशबन्धु चितरंजन दास



भारतीय स्वाधीनता के अमर पुजारियों में, लोकमान्य बाल

गंगाधर के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई नेता नहीं हुआ जो चितरंजनदास की बहुमुखी प्रतिभा तुलना में ठहर सके । यह महान् भारतीय, एक साथ ही, अमर कलाकार, पत्रकार, वक्ता, तार्किक और देश का अनन्य सेवक था, विश्व में ऐसी महान् विभूतियों का जन्म, लोक संग्रह की उच्च भावना के साथ शताब्दियों में होता है ।

देशबन्धु चितरंजनदास का जन्म ५ नवम्बर सन् १८७० ई को एक सुसंस्कृत और सम्पन्न बंगाली परिवार में हुआ । देश में चारों ओर ब्रह्म समाज का बोल-बाला था, इनके पिता भुवनमोहनदास उदार विचारों के समर्थक ब्रह्म समाज के सदस्य थे, उनमें बुद्धितत्व और भावना का समन्वय एक ऊँचे धरातल पर हुआ था । निरंतर सामाचार पत्रों में अपनी मौलिक विचार-धारा का प्रचार वे लेखों के रूप में करते थे, किन्तु उन्हें अवकाश के समय भावना मूलक गीत रचने में भी आनन्द आता था । योग्य पिता के योग्य संरक्षण में, पुत्र का व्यक्तिगत विकास, अपनी विशिष्ठ प्रतिभा के कारण, पिता से भी अधिक हुआ, इसमें आश्चर्य नहीं ।

चितरंजनदास की प्रारंभिक शिक्षा एक मिशन स्कूल में हुई । सन् १८८६ ई० में कलकता विश्व-विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास करने के उपरान्त आप प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रविष्ट हुए और चार वर्ष बाद बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर घर लौटे । तत्कालीन उच्चवर्गीय बंगाली परिवार के व्यक्ति विलायत जाकर बैरिस्टर या आई. सी. एस. बनना सम्मानास्पद समझते थे, उसी प्रथा का अनुसरण करते हुए आप भी विलायत अपनी महत्वाकांक्षाओं को लेकर गये । आई. सी. एस. की परीक्षा में तो आप सफल न हो सके किन्तु बैरिस्टर बनकर अवश्य लौटे । हाँ, उन दिनों आपने सच्ची भारतीय भावना से प्रेरित एक स्तुत्य कार्य अवश्य किया । स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी फिन्सबरी निर्वाचन क्षेत्र से पार्लियामेंट की

सदस्यता के लिये खड़े हुए थे । आपने अपनी अपूर्व वक्तृत्वशक्ति के बल पर उनका पक्ष सबल करके अपनी भारतीय हितैषिता का प्रमाण दिया । सम्भवतः यही भावना आगे चलकर विकसित हुई । और स्वदेश सेवा की अमर चेतना भारतीयों में फूँक गई । दास बाबू सन् १८९३ ई. में भारत लौट आये और कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत करने लगे ।

योग्य और प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी प्रारंभ में, आपको अपने व्यवसाय से पर्याप्त आय न होती थी । इसे व्यवसाय का दोष कहें या आपका । वस्तुतः प्रारम्भ में पुराने वकील नये वकीलों को ठहरने नहीं देते, दास बाबू बड़ा परिश्रम करते थे । पिता, दास बाबू के अध्ययन काल में ऋण के भारी बोझ से दब गये थे, पुत्र का कर्त्तव्य उन्हें ऋण-मुक्त करना था । यद्यपि एक सफल कानून शास्त्री की स्थिति से वह बहुतांश ऋण, अनियमित सिद्ध कर सकते थे, किन्तु इन्होंने कौड़ी कौड़ी ऋण चुकाया । इस सत्यता और निर्लोभ के लिये वह सभी तत्कालीन परिचित व्यक्तियों से प्रशंसित हुए ।

एक सुगन्धित पुष्प की भांति उनका यश-सौरभ फैलने लगा । लोकप्रिय बनाने वाले सभी गुण उनमें थे। वे कवि थे, पत्रकार थे, वक्ता थे, प्रतिभाशाली थे और देश प्रेमी भी । सन् १८९७ ई० में ज्यों ही वासंती देवी के साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पादित हुआ, आप में चेतना और उल्लास की अतिरेकता काव्य की भावनामयी धारा में प्रवाहित हो चली । एक के बाद एक आपकी कई काव्य पुस्तकें प्रकाशित हुईं । 'मालंच' 'माला' 'अन्तर्यामी' 'सागर संगीत' लिखकर आपने अपनी गम्भीर मनन शक्ति और बौद्धिक विकास का परिचय दिया । आप में बंगाली

लेखकों की सारी भावुकता उद्वेलित हो रही थी। उच्च कोटि के कवि और कहानी लेखक के रूप में आप शीघ्र ही ख्याति-लब्ध हो गये। जीवन मृत्यु, आत्मा-परमात्मा जैसे रहस्यमय विषयों को लेकर आपने मौलिक विचारधारा और गूढ़ अनुभूति के आधार पर जो रचनाएँ लिखीं, वे बंगला साहित्य की अमर कृतियों में स्थान पाने योग्य हैं।

दास बाबू का साहित्यिक और राजनैतिक जीवन एक दूसरे से अभिन्न है। एक ओर वे बंगला साहित्य सम्मेलन के रंगमंच से अपने साहित्यक भाषणों की धूम मचाते थे तो दूसरी ओर स्वतन्त्रता की चिङ्गारियाँ उगलते हुए लेख भी 'वन्देमातरम्' पत्र में लिखते थे एक ओर गम्भीर भावुकता से समन्वित साहित्य की क्यारी अभिसिंचित करते थे तो दूसरी ओर राष्ट्र के शुष्क उद्यान को अपनी उन्मुक्त राजनीतिक विचारधारा से अनुप्राणित करते थे। यह भी विलक्षण प्रतिभा थी।

पत्रकार के नाते भी वह असामान्य थे। अंग्रेजी पत्र 'फौरवर्ड' में जनता उनकी उत्कृष्ट सम्पादन कला और राष्ट्रभावना पर मुग्ध थी तो तो 'नारायण' नामक मासिक पत्र में, उनकी वैष्णव विचारधारा और उच्च कोटि की साहित्यकता भक्तो और साहित्य प्रेमियों का सर्वस्व थी। चितरंजन सचमुच लोक-चित्तरंजन थे।

दास बाबू के भाषणों में तो जैसे जादू भरा था। बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में श्री अरविन्द, 'वन्देमातरम्' के द्वारा असाधारण जन-जागृति करने के अपराधी समझे गये। न्यायालय में राजद्रोही अभियुक्त बनकर वह प्रस्तुत थे। दासबाबू ने अपने अपूर्व तर्क कौशल और भाषण शक्ति से रक्षा के सम्पूर्ण साधन जुटा दिये। इस प्रकार एक नहीं, न जाने कितने क्रान्तिकारी राजद्रोहियों की रक्षा करने में उन्होंने अपनी भाषण कला का

सदुपयोग किया । उनके अदम्य उत्साह, निर्भीक पक्ष समर्थन और तर्क कौशल से जनता पर उनकी योग्यता, प्रतिभा और देश-प्रेम की छाप लग गई । उनकी वकालत अप्रतिहत वेग से चल निकली, पुराने वकील मात खा गये और लक्ष्मी उनके पैर चूमने लगी ।

वस्तुत: बंग-भंग से ही आपने देश सेवा की प्रेरणा प्राप्त की । उस समय, राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक दो पत्र थे—'न्यू इण्डिया' और 'वन्देमातरम् ।'

दास बाबू ने इन्हीं दो पत्रों के द्वारा प्रचार कार्य किया । एक देश प्रेमी के नाते, सन् १९०६ ई० में आप देश की प्रमुख संस्था 'कांग्रेस' में प्रविष्ट हुए और नियमित रूप से देश सेवा की ओर अग्रसर हुए । सन् १९१७ ई० में आप बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष मनोनीत हुए । इस पद से एक सारगर्भित भाषण देते हुए आपने प्राचीन भारतीय संस्कृति और उसके आदर्शों पर प्रकाश डाला । पाश्चात्य भौतिकवाद की कड़ी निन्दा की और रचनात्मक कार्यों के महत्व का निर्देश किया, आपने अतीत गौरव को फिर से प्राप्त करने के लिए जनता को उत्साहित किया और ब्रिटिश राजनीति की आलोचना की । उक्त अधिवेशन में आपने भारतीयों को राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए संगठित हो जाने का सन्देश दिया और घोषणा की कि सगठित राष्ट्र के सम्मुख ब्रिटिश साम्राज्यवाद को नतमस्तक होना ही पड़ेगा ।

सन् १९१९ ई० का वर्ष भारतीय इतिहास का दुखदाई अध्याय है । इसी वर्ष रौलट एक्ट के विरोध में जनता ने घोर आन्दोलन किया और परिणामस्वरूप पंजाब हत्याकाण्ड की लोमहर्षक घटनायें हुई । इसी समय कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में प्रान्तीय स्वायतता की मांग प्रस्तुत की गई । दास बाबू ने यह सब उथल-पुथल तटस्थ

दर्शक की भांति नहीं देखा, प्रत्युत वे इस समय महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न हुए। उनके भाषण इन दिनों अग्नि स्फुलिंग उगलते थे—उन्होंने पंजाब हत्याकांड की जाँच कमेटी में सम्मिलित होकर जनरल ओडायर के अत्याचारों की सच्ची रिपोर्ट प्रकाशित करने में सहायता दी। महात्माजी ने रौलेट एक्ट का विरोध प्रदर्शन करने के लिये ६ अप्रेल को एक देशव्यापी हड़ताल कराई जिसमें दास बाबू ने सराहनीय प्रयत्न कर महात्माजी को ठोस सहायता पहुँचाई।

सन् १९२० ई० में कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिये महात्माजी ने ५ कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस समय दास बाबू कांग्रेस की योजना को सफल बनाने के लिये गाँव-गाँव में दौरे करते थे। उन्होंने गांधीजी के कार्यक्रम के अनुसार अपनी अतुल अर्थवर्षिणी वकालत को लात मार दी और राजनैतिक सन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगे। दास बाबू ने इस समय बड़ा त्याग किया और अपनी सारी सम्पत्ति राष्ट्रहित में लगादी। इस सम्पत्ति से पुरुषों और स्त्रियों की चिकित्सा के लिये दो अस्पताल स्थापित हुए। इस प्रकार स्वदेश के लिए तन, मन, धन सब अर्पित करने के कारण भारतीय जनता ने इन्हें देशबन्धु की उपाधि से विभूषित किया।

सन् १९२० ई० के अन्तिम दिनों में असहयोग आन्दोलन सरकार की दमन नीति के कारण उग्रतम हो गया। काँग्रेस ने एक करोड़ रुपया और एक करोड़ स्वयं सेवकों की मांग देश के सम्मुख रखी। दास बाबू के आग्नेय भाषणों से यह माँग चिनगारी की भाँति सारे बंगाल प्रांत में फैल गई और देखते देखते दान बरसने लगा। स्वयं सेवक दल संगठित होकर सामने आया, इन सेवकों ने दास बाबू की प्रेरणा से सरकारी न्यायालयों, पाठशा-

लाओं और अन्य कार्यालयों में पहुँच कर धरना दिया। फलतः कांग्रेस की योजना के अनुसार न जाने कितने व्यक्तियों ने अपने-अपने पदों से त्याग-पत्र दे दिये। तत्कालीन आंदोलन को बंगाल प्रांत में सफल बनाने का सारा श्रेय दास को है, उनकी उत्साहमयी मूर्ति प्रेरणा का केन्द्र बनकर विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करवाती थी, खद्दर प्रचार का साधन बनती थी और स्वयं सेवकों के हृदय में बलिदान की भावना भरती थी। सन् १९२१ ई० में अंग्रेजों का दमन दावा-नल जब और भी उग्र हुआ और भारतीय आन्दोलन प्रतिक्रियावादी बनकर हिंसात्मक होने लगा तो महात्माजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। देश की परिस्थिति को नियंत्रित करने के लिये दास बाबू कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, किन्तु इस निर्वाचन के कुछ काल पूर्व ही सरकार ने उन पर अभियोग चलाकर उन्हें राजनैतिक बन्दी बना लिया। इधर महात्माजी ने असहयोग आंदोलन में हिंसात्मक प्रगति देखकर उसे स्थगित कर दिया।

६ मास का कारावास भोगकर जब देशबन्धु बाहर आये तो गया कांग्रेस की कार्यकारिणी में आपने अध्यक्षपद से बल-पूर्वक घोषित किया कि रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ, कांग्रेस को कौंसिलों में प्रवेश कर देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेनी चाहिये। उनका विश्वास था कि निरन्तर संघर्ष करते-करते कांग्रेस की शक्ति क्षीण हो गई है। अतः कांग्रेस के निर्वाचित व्यक्ति व्यवस्थापिका सभाओं में जाकर शक्ति संग्रह करें और शासन-सुधार की योजनायें बनावें। महात्माजी इस मत के समर्थक न थे, अतः कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई। आपके अनुयायी भी संख्या में अधिक और संगठित थे। उन्होंने 'स्वराज्य' पार्टी का निर्माण किया।

दास बाबू के भागीरथ प्रयत्न से 'स्वराज्य पार्टी' दिनोंदिन प्रभावशाली होती गई। अन्त में इन्होंने अपनी शक्ति का क्रियात्मक परिचय भी दिया। अपने दल का बंगाल में भली भांति संगठन कर, म्यूनिसिपल एक्ट की नई योजना के अनुसार आपने कलकत्ता कारपोरेशन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। यह प्रभुत्व निरन्तर कई वर्ष तक स्थिर रहा और कलकत्ता के नागरिकों को इससे ठोस सहायता पहुँची। स्वयं दास बाबू दो बार कारपोरेशन के मेम्बर निर्वाचित हुए। उन्होंने निर्भीकता पूर्वक कार्य किया, और सदैव सरकारी नीति और अड़ंगेबाजी का घोर विरोध करते रहे, दास बाबू ने निरन्तर परिश्रम और त्यागपूर्ण सेवाएँ कर इस दल को खूब शक्तिशाली बना दिया।

इन दिनों बंगाल में एक गुप्त क्रान्तिकारी दल का संगठन हो रहा था जिसका विश्वास हिंसात्मक नीति पर अधिक था। स्थान-स्थान पर अंग्रेजों की हत्याओं और लूटमार या उपद्रव के समाचार मिलते थे जिससे ब्रिटिश शासन की नीति उग्रतर होती जा रही थी और सरकार का अत्याचार आग्रह उमड़ता जा रहा था, दास बाबू ने इस ओर बंगाल का ध्यान आकर्षित किया और अपने प्रभावशाली भाषणों के द्वारा जनता को चेतावनी दी कि वह इस प्रकार के दायित्वहीन कार्यों से विरत हो, अन्यथा इसका परिणाम घातक होगा। उनके भाषणों का जनता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

स्वराज्य पार्टी बड़ा शक्तिशाली दल था, उसे दास बाबू का प्रभावपूर्ण नेतृत्व भी प्राप्त था। सन् १९२५ ई० में दास बाबू ने बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन में स्वतन्त्रता की नई योजना बना कर सरकार के साथ समझौता कर लेने की राय प्रकट की, सम्मेलन ने उनका मत स्वीकार भी कर लिया किन्तु इसी बीच में दार्जिलिंग में, १६ जून

सन् १९२५ ई० को वे संसार से चल दिये। आपके शव के साथ दार्जिलिंग से कलकत्ते तक शोकाकुल असंख्य जन समुदाय गया। भीड़ का गम्भीर मौन इस बात का द्योतक था कि दास बाबू भारतीय हृदय में कितना स्थान बना चुके थे।

देशबन्धु चितरंजन दास का व्यक्तित्व महान् था, उनकी योजनाएँ मौलिक होती थी, उनके त्याग और देश प्रेम का भारतीयों पर प्रभाव पड़ता था और वे अपने नेता के एक संकेत पर अपना सर्वस्व निछावर कर देते थे।